वर्ष : ७
अंक : ५२

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

अप्रैल
१९९७
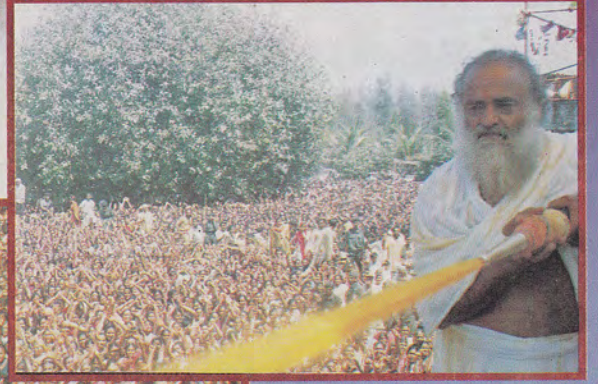
ऋषि प्रसाद

6/-

होलीकोत्सव -
सुरत आश्रम

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ७
अंक : ५२
९ अप्रैल १९९७

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत, नेपाल व भूटान में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) आजीवन : रू. ५००/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 30
(२) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८० ००५
फोन : (०७९) ७४८६३१०, ७४८६७०२.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा,
साबरमती, अमदावाद-३८० ००५ ने
विनय प्रिन्टिंग प्रेस, मीठाखली, अमदावाद, पारिजात प्रिन्टरी एवं भार्गवी प्रिन्टर्स, राणीप, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया ।

''भक्त जब एक निश्चित सोपान तक पहुँचता है और बोध (ज्ञान) का अधिकारी बनता है तब जिनकी वह भक्ति करता है वे ही भगवान गुरु के हृदय में बोलते हैं और उसको मार्गदर्शन देते हैं । गुरु उसे यही कहने के लिए ही आते हैं कि भगवान तेरे अंदर हैं । भीतर गोता मार और उन्हें जान ले । भगवान, गुरु और आत्मा एक ही हैं ।''

– श्री रमण महर्षि

प्रस्तुत है...

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें ।

मधुर स्मृति

२ अप्रैल '९७ : प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज की जयंती पर विशेष

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

न गुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः ।
न गुरोरधिकं ज्ञानं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

'गुरु से श्रेष्ठ कोई तत्त्व नहीं है, गुरु से अधिक कोई तप नहीं है और गुरु से विशेष कोई ज्ञान नहीं है, ऐसे श्री गुरुदेव को मेरा नमस्कार है ।'

फाल्गुन कृष्णपक्ष की ९ संवत् २०५३ (सिंधी) तदनुसार दिनांक : २ अप्रैल, १९९७ अर्थात् पूज्यपाद सद्गुरुदेव स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज का जयंती दिवस...

आज से ठीक ११६ वर्ष पूर्व संवत् १९३७ में सिन्धु प्रान्त के हैदराबाद जिले के टंडे बाग तहसील में, महराब चांडिए नामक गाँव में ब्रह्मक्षत्रिय कुल में श्री टोपणदास एवं श्रीमती हेमीबाई की गृहवाटिका में जिस कली का प्रादुर्भाव हुआ, बाद में उसी कली ने एक सुन्दर, सुरभित पुष्प के रूप में संपूर्ण विश्व को अपनी सौरभ से सुवासित किया । वे ही थे मेरे परम श्रद्धेय पूज्यपाद सद्गुरुदेव श्री लीलाशाहजी महाराज, जिनका संपूर्ण जीवन मानो एक यज्ञ था ।

मुण्डकोपनिषद् में आता है :

ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ।

'ब्रह्म को जाननेवाला ब्रह्म ही हो जाता है ।'

स्वयं लीलाशाहजी महाराज कहते थे :

''क्या करें भाई... ! यह आत्मधन है ही ऐसा । यह जिसे मिल जाये उसे सब मिल जाता है । इसके आनंद के आगे इन्द्रपद, ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पद भी फीका नजर आता है । इसीलिये वे देव उस पद में इतना रमण नहीं करते जितना आत्मसुख में रमण करते हैं । जिसे यह नहीं मिलता उसे अगर बाकी संसार का सारा ऐश्वर्य मिल जाय तब भी कुछ नहीं मिलता क्योंकि समय आने पर वह छूट जाता है । पाना है तो आत्मपद पाओ, अपने-आपको पाओ, आत्म-साक्षात्कार करो । अन्यथा ये पद और प्रतिष्ठा तो मनुष्यों ने मनुष्यों को दी है । इन खिलौनों से राजी नहीं होना है । इन खिलौनों में उलझना नहीं है । ये चीजें व्यवहार के लिए ठीक हैं, मगर सच्ची शांति तो अपने-आपको जानने से ही मिलती है ।''

ऐसे ब्रह्मवेत्ता, श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ पूज्यपाद सद्गुरुदेव का पूरा जीवन ही मानो कर्मयोग का साकार श्रीविग्रह था । मेरे गुरुदेव अस्सी वर्ष की अवस्था में भी किताबों की गठरी बाँधकर, सिर पर रखकर नैनीताल की पहाड़ियों में जाते, सत्संग सुनाते, प्रसाद बाँटते और लोगों को एक-एक किताब देकर कहते : ''आज शुक्रवार है । अगले शुक्रवार को पुनः इसी गाँव में आऊँगा । तब ये किताबें ले जाऊँगा और दूसरी किताबें दे जाऊँगा । तब तक तुम लोग इन्हें पढ़ लेना और जो अच्छा लगे, उसे याद कर लेना, लिख लेना । पूरी किताब दो-तीन बार जरूर पढ़ लेना और हो सकता है कि मैं आकर कुछ पूछूँ । अतः तैयार रहना ।''

> *मेरे गुरुदेव अस्सी वर्ष की अवस्था में भी किताबों की गठरी बाँधकर, सिर पर रखकर नैनीताल की पहाड़ियों में जाते, सत्संग सुनाते, प्रसाद बाँटते और लोगों को एक-एक किताब देते । उन्हीं महापुरुष के निष्काम कर्मयोग का फल आज हम लाखों लोगों को मिल रहा है... मेरे साधक भी घर-घर जाकर 'ऋषि प्रसाद' का दैवी कार्य करते हुए अपने दैवत्व को जगाते हैं ।*

साधना में सफलता का राजमार्ग

कभी-कभी इष्ट को प्यार करते हुए ध्यान करना चाहिए । वे इष्ट चाहे भोलानाथ हों, भगवान श्रीराम, श्रीकृष्ण या चाहे कोई देवी-देवता हों या फिर अपने सद्गुरुदेव हों । जिनमें आपकी अधिक श्रद्धा हो उन्हीं के चिन्तन में रम जाओ । रोना हो तो उन्हीं के विरह में रोओ । हँसना हो तो उन्हीं को प्यार करते हुए हँसो । एकाग्र होना हो तो उन्हीं के चित्र को एकटक निहारते हुए एकाग्र बनो । इष्ट की लीला का श्रवण करना भी उपासना है । इष्ट का चिन्तन करना भी उपासना है । मन-ही-मन इष्ट के साथ चौरस खेलना भी उपासना है । इष्ट के साथ मानसिक कबड्डी खेलना भी उपासना का ही अंग है । ऐसा उपासक शरीर की बीमारी के वक्त सोये-सोये भी उपासना कर सकता है । उपासना तो हर अवस्था में हो सकती है । बस, मन इष्टाकार हो जाय ।

मेरे इष्ट गुरुदेव थे । मैं नदी पर घूमने जाता तो मन-ही-मन उनसे बातें करता । दोनों की ओर से होनेवाला संवाद मन-ही-मन गढ़ लेता । मुझे बड़ा मजा आता था । दूसरे किसी इष्ट से प्रत्यक्ष में कभी बात नहीं हुई थी, उनकी लीला देखी नहीं थी लेकिन अपने गुरुदेव पूज्यपाद श्री लीलाशाहजी भगवान का दर्शन, उनका बोलना-चालना, व्यवहार करना आदि सब लीलाएँ प्रत्यक्ष में देखने को मिलती थीं, उनसे बातचीत का मौका भी मिला करता था । अत: एकान्त में जब मैं अकेला होता तब गुरुदेव के साथ मन-ही-मन अठखेलियाँ कर लेता । अभी भी कभी-कभी पुराने अभ्यास के मुताबिक घूमते-फिरते अपने सांई से बातें कर लेता हूँ, प्यार कर लेता हूँ । सांई तो साकार नहीं हैं, अपने ही मन के दो हिस्से हो जाते हैं । एक सांई होकर प्रेरणा देता है, दूसरा साधक होकर सुनता है क्योंकि सांई तत्त्व व्यापक होता है... गुरुतत्त्व व्यापक होता है ।

कभी-कभी उपासक शिकायत करता है कि मेरा मन भगवान में नहीं लगता । लेकिन जो लोग थोड़े भी उन्नत उपासक हैं, उनका मन जब चाहे तब भगवान

जिन महापुरुष के संकल्प मात्र से नीम का पेड़ चल पड़ा था, जिन्होंने २०-२२ वर्ष की उम्र में ही परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया था, कुछ वर्ष योग-साधना में लगाकर वे योग-सामर्थ्य से सम्पन्न हुए थे और नीम का पेड़ चला दिया था, ऐसे वे महापुरुष ८० वर्ष की अवस्था में भी सिर पर किताबों की गठरी लेकर पहाड़ी गाँवों में जाकर सत्संग का प्रसाद पहुँचाते थे और उन्हीं महापुरुष के निष्काम कर्मयोग का फल आज हम लाखों लोगों को मिल रहा है...

मेरे साधक भी घर-घर जाकर 'ऋषि प्रसाद' का दैवी कार्य करते हुए अपने दैवत्व को जगाते हैं ।

हे मेरे सद्गुरुदेव ! आपके श्रीचरणों में कोटि-कोटि नमन... !

आओ श्रोता तुम्हें सुनाऊँ
महिमा लीलाशाह की ।
सिंध देश के संत शिरोमणि
बाबा बेपरवाह की ॥
बचपन में ही घर को छोड़ा
गुरुचरन में आन पड़ा ।
तन मन धन सब अर्पण करके
ब्रह्मज्ञान में दृढ़ खड़ा ॥
नदी पलट सागर में आयी
वृत्ति अगम अथाह की ।
आओ श्रोता०
योग की ज्वाला भड़क उठी और
भोग भरम को भस्म किया ।
तन को जीता मन को जीता
जन्म मरण को खत्म किया ॥
नदी पलट सागर में आयी
वृत्ति अगम अथाह की ।
आओ श्रोता०
सुख को भरते दु:ख को हरते
करते ज्ञान की बात जी ।
जग की सेवा लाला नारायण
करते दिन रात जी ॥
जीवन्मुक्त विचरते हैं ये
दिल है शहनशाह की ।
आओ श्रोता०

में लग सकता है ।

मेरे गुरुदेव कभी-कभी कमरे में अकेले बैठे-बैठे भगवान के साथ विनोद करते थे । उनके भगवान तो तत्त्व रूप में थे । वे जागे हुए महापुरुष थे । वे एकान्त में कभी-कभी ठहाका मारकर हँसते और मोर की तरह आवाज करते :

''पियू... !''

फिर अपने-आपको कहते :

''बोल, लीला (शाह) !''

वे अपने-आपको 'शाह' नहीं बोलते थे, पहले दो अक्षर ही अपने लिए बोला करते थे, लेकिन मुझसे वह नाम बोला नहीं जाता । वे अपने-आपसे संवाद-वार्ता-विनोद करते थे :

''बोल, लीलाशाह !''

''जी सांई !''

''रोटी खाएगा ?''

''हाँ सांई ! भूख लगी है ।''

''रोटी तब खाएगा जब सत्संग का मजा लेगा । लेगा न बेटा ?'' (वे स्वयं से ही कहते और जवाब भी स्वयं ही देते कि -)

''हाँ, महाराज ! लूँगा, जरूर लूँगा ।''

''कितनी रोटी खाएगा ?''

''तीन तो चाहिए ।''

''तीन रोटी चाहिए तो तीनों गुणों से पार होना पड़ेगा । बोल, होगा न ?''

''हाँ, सांई ! पार हो जाऊँगा लेकिन अभी तो भूख लगी है ।''

''अरे, भूख तुझे लगी है ? झूठ बोलता है ? भूख तेरे प्राणों को लगी है ।''

''हाँ सांई ! प्राणों को लगी है ।''

''शाबाश ! अब भले ही रोटी खा, लीलाशाह ! रोटी खा ।''

ऐसा करके विनोद करते और फिर भोजन पाते । उनके उपासना-काल का कोई अभ्यास पड़ा होगा तो नब्बे साल की उम्र में भी ऐसा किया करते थे ।

यह सब बताने के पीछे मेरा प्रयोजन यही है कि तुम्हें भी उपासना की कोई कुँजी हाथ लग जाये ।

इष्ट का चिन्तन करना अथवा इष्ट का इष्ट आत्मा अपने को मानना और शरीर को अपनेसे अलग मानकर चेष्टा और चिन्तन करना यह भी उपासना के अन्तर्गत आ जाता है । गुरु को जो शरीर में ही देखते हैं वे देर-सबेर डगमगा जाते हैं । गुरु को शरीर मानना और शरीर को ही गुरु मानना यह भूल है । गुरु तो ऐसे हैं जिनसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है । 'शिवमहिम्न स्तोत्र' में इसी के बारे में कहा गया है :

नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ।

आत्मा की मस्ती में झूम जाइये

राम-नाम के रंग से अपना दिल रंगाइये।
आत्मा की मस्ती में झूम जाइये॥
ये समा मिले न तुझको बार-बार।
करना चाहे स्व का तू कर दीदार।
प्रभु प्रेम में प्रीति बढ़ाइये॥
आत्मा की०

गाफिल तू हो जा गुरुवर का एक बार।
कर देंगे तुझे दाता भव से पार।
प्रभु चरणों में नित शीश झुकाइये ॥
आत्मा की०

श्वासों के मोती बिखरते जा रहे।
जिंदगी के पल यूँ ही ढलते जा रहे।
राम-नाम से दिल को सजाइये ॥
आत्मा की०

झूम जा फकीरी मस्ती में सदा।
पी के राम-नाम रस का जाम तू।
रोम-रोम में प्रभु को पाइये ॥
आत्मा की०

शिवस्वरूप तत्त्व का तू ध्यान धर ।
हृदय में तू आत्म-अनुसंधान कर ।
'साक्षी' स्वरूप में डूब जाइये ॥
आत्मा की०

- जानकी ए. चंदनानी
अहमदाबाद

रामतत्त्व की महिमा

दिनांक : १६-४-९७ श्रीरामनवमी पर विशेष

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

एक दिन पार्वतीजी ने महादेवजी से पूछा : ''आप हरदम क्या जपते रहते हैं ?''

उत्तर में महादेवजी विष्णुसहस्रनाम कह गये ।

अन्त में पार्वतीजी ने कहा : ''ये तो आपने हजार नाम कह दिये । इतना सारा जपना तो सामान्य मनुष्य के लिए असंभव है । कोई एक नाम कहिए जो सहस्रों नामों के बराबर हो और उनके स्थान में जपा जाये ।''

तब महादेवजी बोले :

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनामतत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥

'हे सुमुखि ! रामनाम विष्णुसहस्रनाम के तुल्य है । मैं सर्वदा 'राम... राम... राम...' इस प्रकार मनोरम राम-नाम में ही रमण करता हूँ ।'

ऐसी बात नहीं है कि अवधपुरी में राजा दशरथ के घर श्रीराम अवतरित हुए तब से ही लोग श्रीराम का भजन करते हैं । नहीं नहीं । दिलिप राजा, रघु राजा एवं दशरथ के पिता अज राजा भी श्रीराम का ही भजन करते थे क्योंकि श्रीराम केवल दशरथ के पुत्र ही नहीं हैं बल्कि रोम-रोम में जो चेतना व्याप रही है, रोम-रोम में जो रम रहा है उसका ही नाम है राम ।

रमन्ते योगीनः यस्मिन् स रामः ।

जिसमें योगी लोगों का मन रमण करता है उसीको कहते हैं राम ।

किसी महात्मा ने कहा :

एक राम घट-घट में बोले ।
एक राम दशरथ घर डोले ।
एक राम का सकल पसारा ।
एक राम है सबसे न्यारा ॥

तब शिष्य ने कहा : ''गुरुजी ! आपके कथनानुसार तो चार राम हुए । ऐसा कैसे ?''

गुरु : ''थोड़ी साधना कर, जप-ध्यानादि कर, फिर समझ में आ जायेगा ।''

साधना करके शिष्य की बुद्धि सूक्ष्म हुई, तब गुरु ने कहा :

जीव राम घट-घट में बोले ।
ईश राम दशरथ घर डोले ।
बिंदु राम का सकल पसारा ।
ब्रह्म राम है सबसे न्यारा ॥

शिष्य बोला : ''गुरुदेव ! जीव, ईश, बिंदु और ब्रह्म इस प्रकार भी तो राम चार ही हुए न ?''

गुरु ने देखा कि साधनादि करके इसकी मति थोड़ी सूक्ष्म तो हुई है किन्तु अभी तक चार राम दिख रहे हैं । गुरु ने करुणा करके समझाया कि : ''वत्स ! देख । घड़े में आया हुआ आकाश, मठ में आया हुआ आकाश, मेघ में आया हुआ आकाश और उससे अलग व्यापक आकाश, ये चार दिखते हैं । अगर तीनों उपाधियों को, घट, मठ और मेघ को हटा दो तो चारों में आकाश तो एक का एक है । इसी प्रकार...

वही राम घट-घट में बोले ।
वही राम दशरथ घर डोले ।
उसी राम का सकल पसारा ।
वही राम है सबसे न्यारा ॥

रोम-रोम में रमनेवाला चैतन्य तत्त्व वही-का-वही है और उसीका नाम है चैतन्य राम ।''

वे ही श्रीराम जिस दिन दशरथ-कौशल्या के घर साकार रूप में अवतरित हुए उसी दिन को श्रीरामनवमी के पावनपर्व के रूप में मनाते हैं भारतवासी ।

कैसे हैं वे श्रीराम ? भगवान श्रीराम नित्य कैवल्य ज्ञान में विचरण करते थे । वे आदर्श पुत्र, आदर्श शिष्य, आदर्श राजा, आदर्श पति, आदर्श भ्राता, आदर्श मित्र एवं आदर्श शत्रु थे । आदर्श शत्रु ? हाँ, आदर्श शत्रु थे तभी तो शत्रु भी उनकी प्रशंसा किये बिना न रह सके ।

ग्रंथों में कथा आती है कि लक्ष्मण के द्वारा मारे गये मेघनाद की दक्षिण भुजा सती सुलोचना के समीप जा गिरी और पतिव्रता का आदेश पाकर इस भुजा ने सारा वृत्तान्त लिखकर बता दिया । सुलोचना ने निश्चय किया कि मुझे अब सती हो जाना चाहिए । किन्तु पति का शव तो राम-दल में पड़ा हुआ था । फिर वह कैसे सती होती ? जब अपने ससुर रावण से उसने अपना अभिप्राय कहकर अपने पति का शव मँगवाने के लिए कहा तब रावण ने उत्तर दिया : ''देवि ! तुम स्वयं ही राम-दल में जाकर अपने पति का शव प्राप्त करो । जिस समाज में बालब्रह्मचारी श्रीहनुमान, परम जितेन्द्रिय श्रीलक्ष्मण तथा एकपत्नीव्रती भगवान श्रीराम विद्यमान हैं, उस समाज में तुम्हें जाने से डरना नहीं चाहिए । मुझे विश्वास है कि इन स्तुत्य महापुरुषों के द्वारा तुम निराश नहीं लौटायी जाओगी ।''

जब रावण सुलोचना से ये बातें कह रहा था उस समय कुछ मंत्री भी उसके पास बैठे थे । उन लोगों ने कहा : ''जिनकी पत्नी को आपने बंदिनी बनाकर अशोक वाटिका में रख छोड़ा है, उनके पास आपकी बहू का जाना कहाँ तक उचित है ? यदि यह गयी तो क्या सुरक्षित वापस लौट सकेगी ?''

यह सुनकर रावण बोला : ''मंत्रियों ! लगता है तुम्हारी बुद्धि विनष्ट हो गयी है । अरे ! यह तो रावण का काम है जो दूसरे की स्त्री को अपने घर में बंदिनी बनाकर रख सकता है, राम का नहीं ।''

धन्य है श्रीराम का दिव्य चरित्र, जिसका विश्वास शत्रु भी करता है और प्रशंसा करते थकता नहीं ! प्रभु श्रीराम का पावन चरित्र दिव्य होते हुए इतना सहज-सरल है कि मनुष्य चाहे तो अपने जीवन में भी उसका अनुकरण कर सकता है ।

श्रीरामनवमी के पावन पर्व पर उन्हीं पूर्णाभिराम श्रीराम के दिव्य गुणों को अपने जीवन में अपनाकर, श्रीरामतत्त्व की ओर प्रयाण करने के पथ पर अग्रसर हों, यही अभ्यर्थना... यही शुभकामना...

ऐसी बात नहीं है कि अवधपुरी में राजा दशरथ के घर श्रीराम अवतरित हुए तब से ही लोग श्रीराम का भजन करते हैं । नहीं नहीं । दिलिप राजा, रघु राजा एवं दशरथ के पिता अज राजा भी श्रीराम का ही भजन करते थे क्योंकि श्रीराम केवल दशरथ के पुत्र ही नहीं हैं बल्कि रोम-रोम में जो चेतना व्याप रही है, रोम-रोम में जो रम रहा है उसीका ही नाम है राम ।

पूं. बापू के सत्संग कार्यक्रम

(१) अमदावाद आश्रम में चेटीचंड की वेदान्त शक्तिपात साधना शिविर : ६ से ८ अप्रैल, ९७. संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-३८०००५. फोन : (०७९) ७४८६३१०, ७४८६७०२.

(२) दिल्ली में दिव्य सत्संग समारोह : १२ और १३ अप्रैल ९७. सुबह ९ से ११-३०. शाम ४ से ६. मधुबन चौक, प्रीतमपुर, दिल्ली-३४. फोन : ५७६४१६१, ७२४८७८८, ७०२५१२५.

(३) सोनीपत (हरियाणा) में : ध्यान योग वेदांत शक्तिपात साधना शिविर : १५ से १७ अप्रैल ९७. विद्यार्थी शिविर : १८ से २० अप्रैल ९७. जाहिर सत्संग रोज शाम ४ से ६-३०. सेक्टर-२३, महलाना रोड़ । फोन : (०१२६४) ४३१७०, ४०११२, २०१५१, ४१८१२.

मनोनिग्रह की महिमा

एक मनोवैज्ञानिक मीमांसा

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

लोग कहते हैं कि यह प्रगति का युग है लेकिन वास्तव में यह भारी अवनति का युग है । आज के जवानों के साथ बड़ा अन्याय हो रहा है । चारों ओर से उन पर विकारों को भड़कानेवाले आक्रमण होते रहते हैं ।

लोग कहते हैं कि यह प्रगति का युग है लेकिन वास्तव में यह भारी अवनति का युग है । आज के जवानों के साथ बड़ा अन्याय हो रहा है । चारों ओर से उन पर विकारों को भड़कानेवाले आक्रमण होते रहते हैं ।

एक तो वैसे ही पशु-प्रवृत्तियाँ यौन उच्छृंखलता की ओर प्रोत्साहित करती हैं, सामाजिक परिस्थितियाँ भी उसी ओर आकर्षण बढ़ाती हैं... इस पर उस प्रवृत्तियों को वैज्ञानिक समर्थन मिलने लगे और संयम को हानिकारक बताया जाने लगे... कुछ तथाकथित आचार्य भी, फ्रायड़ जैसे नास्तिक अधूरे मनोवैज्ञानिक के व्यभिचार-शास्त्र का आधार देकर **'संभोग से समाधि'** का उपदेश देने लगे तब तो ईश्वर ही ब्रह्मचर्य और दाम्पत्यजीवन की पवित्रता का रक्षक है ।

सेक्स को ऊर्ध्वगामी बनाकर जो उल्लास, प्रसन्नता, प्रमोद और आनंद मिलता है, योगशास्त्र में उसकी बड़ी प्रशंसा की गई है और उस सुख को काम-सुख से सदैव बढ़कर बताया गया है । यौनाकर्षण तो क्षणिक सुख की प्रेरणा देता है । यौनाकर्षण से आंशिक सुख भले ही मिल जाता हो लेकिन बाद में शरीर और आत्मा की दुर्गति होती है । मनुष्य के विचार और क्रिया-कलाप सब अधोगामी होते चले जाते हैं । व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में उपद्रव खड़े हो जाते हैं ।

आँकड़े बताते हैं कि आज पाश्चात्य देशों में यौन सदाचार की कितनी दुर्गति हुई है । इस दुर्गति के परिणामस्वरूप वहाँ के व्यक्तिगत जीवन में रोग इतने बढ़े हैं कि अमेरिका से तीन गुनी ज्यादा बस्ती भारत में होने पर भी भारत से १० गुनी ज्यादा दवाइयाँ अमेरिका में खर्च होती हैं । मानसिक रोग इतने बढ़े हैं कि हर दस अमेरिकन में एक को मानसिक रोग होता है । दुर्वासनाएँ इतनी बढ़ी हैं कि हर ६ सेकंड़ में एक बलात्कार होता है और हर वर्ष में २० लाख कन्याएँ विवाह के पूर्व ही गर्भवती हो जाती हैं । मुक्त साहचर्य (free sex) के हिमायती होने के कारण शादी के पहले वहाँ प्राय: हर व्यक्ति जातीय संबंध बनाने लगता ह । इसीकी वजह से ६५% शादियाँ तलाक में बदल जाती हैं और मनुष्य के लिए प्रकृति के निर्धारित संयम का उपहास करने के कारण प्रकृति ने उनको जातीय रोगों का शिकार बना रखा है । उनमें मुख्यत: एइड्स (AIDS) की बीमारी दिन दुनी-रात चौगुनी फैलती जा रही है । वहाँ के पारिवारिक जीवन में क्रोध, कलह, असंतोष और संताप एवं सामाजिक जीवन में अशांति, उच्छृंखलता, उद्दंडता और शत्रुता का महा भयानक वातावरण छा गया है । विश्व की ४ % जनसंख्या अमेरिका में है । उसके उपयोग के लिए विश्व की ४० % साधन-सामग्री (जैसे कि कार, टी. वी., एयरकंडिशन्ड घर आदि) जुटा रखी है फिर भी अपराधवृत्ति इतनी बढ़ी है कि हर १० सेकंड में एक सेंधमारी होती है, हर लाख व्यक्तियों में से ४२५ व्यक्ति कारागार में सजा भोग रहे हैं जबकि भारत में हर लाख व्यक्ति में से २३ व्यक्ति जेल में रहे हैं । १९९२ के वर्ष में अमेरिका में कुल १ करोड़ ४० लाख अपराध पुलिस

रेकार्ड पर दर्ज किये गये हैं ।

इन तथ्यों का मूल कारण यही है कि पाश्चात्य लोगों ने फ्रायड़ के व्यभिचारशास्त्र का अनुकरण किया । मनोविज्ञानी फ्रायड़ ने कहा कि काम-वासना की अतृप्त इच्छाएँ ही मनोविकारों को उत्पन्न करती हैं और उस अपराध से प्रतिभा कुण्ठित होती है। मानसिक ही नहीं, शारीरिक स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ता है और व्यक्तित्व दब जाता है। उन्मुक्त कामसेवन की वकालत करते हुए उस पर लगे प्रतिबन्धों को हानिकारक बताया। उसका अनुकरण करनेवाले पश्चिमी देशों में तो उल्टे ही परिणाम देखने को मिले ।

कुछ तथाकथित आचार्य भी फ्रायड़ जैसे नास्तिक अधूरे मनोवैज्ञानिक के व्यभिचार-शास्त्र का आधार देकर 'संभोग से समाधि' का उपदेश देने लगे तब तो ब्रह्मचर्य और दाम्पत्यजीवन की पवित्रता का ईश्वर ही रक्षक है ।

इससे यह स्पष्ट होता है कि काम को संयत न किया जायेगा तो मनुष्य पशु से भी बदतर हो जायेगा । पूर्व के देशों में लोग नैतिक और धार्मिक मूल्यों के कारण मानसिक रोगों से, शारीरिक रोगों से और सामाजिक अव्यवस्था से उतने पीड़ित नहीं हैं जितने पाश्चात्य देशों के लोग पीड़ित हैं । अत: पाश्चात्य अंधानुकरण से बचना होगा । फ्रायड़ के उक्त प्रतिपादन से यौन-सदाचार पर बुरा प्रभाव पड़ा है और लोगों का जितना-जितना विश्वास फ्रायड़ के प्रतिपादन पर जमा है उतना ही उतना असंयम और व्यभिचार को प्रोत्साहन मिला है । सुशिक्षित वर्ग में इस तथाकथित मनोविज्ञान के आधार पर यह मान्यता जड़ जमाती जा रही है कि : ''कामेच्छा की पूर्ति आवश्यक है । उसे स्वच्छन्द उपभोग का अवसर मिलना चाहिए । संयम से शारीरिक और मानसिक हानि होती है ।'' इस प्रतिपादन का कुप्रभाव नर-नारी के बीच पावन संबंधों की समाज-व्यवस्था, सुव्यवस्था एवं पवित्रता पर पड़ रहा है । दाम्पत्य जीवन में यदि कुछ अतृप्ति रह जाती है तो व्यक्ति उसे बाहर पूरा करने में भय, लज्जा, संकोच का अनुभव नहीं करता वरन् उस उद्धत पाशवी आचरण को शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक मानता है । यह व्यभिचार का खुला समर्थन है । दाम्पत्य मर्यादाओं को फिर कैसे स्थिर रखा जा सकेगा ? अविवाहित या विधुर यदि व्यभिचार पर प्रवृत्त होते हैं तो उन्हें किस तर्क से समझाया जा सकेगा ? फिर जो छेड़छाड़ और गुण्डागर्दी की अश्लील शर्मनाक घटनाएँ आये दिन होती रही हैं उन्हें अवांछनीय या अनावश्यक कैसे ठहराया जा सकेगा ? फ्रायड़ का शास्त्र दूसरे शब्दों में व्यभिचारशास्त्र ही है जिसे मनोविज्ञान में दार्शनिक मान्यता देकर समाज-व्यवस्था पर कुठाराघात किया जा रहा है। मनोविज्ञानियों के प्रतिपादनों को देखते हुए फ्रायड़ के काम-स्वेच्छाचार का प्रतिपादन बहुत ही बचकाना और एकांगी प्रतीत होता है । फिर भी खेद इसी बात का है कि ऐसे अधूरे और अवांछनीय निष्कर्षों को अग्रिम पंक्ति में बिठाने की ऐसी भूल की जा रही है जिसका परिणाम मानव समाज का भविष्य अन्धकारमय ही बना सकता है ।

फ्रायड़ का शास्त्र दूसरे शब्दों में व्यभिचारशास्त्र ही है जिसे मनोविज्ञान में दार्शनिक मान्यता देकर समाज-व्यवस्था पर कुठाराघात किया जा रहा है ।

यह फ्रायड़ जैसे कामुकता के समर्थक दार्शनिकों की ही देन है जिसने पाश्चात्य देशों को मनोविज्ञान के नाम पर बहुत प्रभावित किया है और वहीं से वह आँधी अब इस देश में भी बढ़ती आ रही है। अत: इस देश की भी अमेरिका जैसी अवदशा हो, उसके पहले सावधान होना पड़ेगा । यहाँ के कुछ अविचारी दार्शनिक भी फ्रायड़ के आधार पर **'संभोग से समाधि'** का उपदेश देने लगे, जिससे युवा पीढ़ी गुमराह हुई है । फ्रायड़ ने तो केवल मनोवैज्ञानिक मान्यता देकर व्यभिचारशास्त्र बनाया लेकिन तथाकथित दार्शनिक ने

'संभोग से समाधि' द्वारा व्यभिचार को आध्यात्मिक मान्यता देकर धार्मिक लोगों को भी भ्रष्ट किया। **'संभोग से समाधि' नहीं होती, सत्यानाश होता है।** संयम से ही समाधि होती है। इस भारतीय मनोविज्ञान को अब पाश्चात्य मनोविज्ञानी भी स्वीकार करने लगे हैं। भारतीय मनोविज्ञानी पतंजलि के सिद्धांतों पर चलनेवाले हजारों योगसिद्ध महापुरुष इस देश में हुए हैं, अभी भी हैं और आगे भी होते रहेंगे जबकि **'संभोग से समाधि'** के मार्ग पर कोई योगसिद्ध महापुरुष हुआ हो ऐसा हमने तो नहीं सुना। उस मार्ग पर चलनेवाले पागल हुए हैं। ऐसे कई नमूने हमने देखे हैं। वेदकालीन महापुरुषों के मनोविज्ञान के आधार पर रचे गये नैतिक और धार्मिक आदर्शों पर टिकी हुई भारतीय संस्कृति लाखों वर्षों के बाद भी जीवित है जबकि भोगवादी कई संस्कृतियाँ इस धरातल पर प्रकट हुईं और भोगवाद के प्रभाव से नष्ट भी हो गईं। आज कल की पश्चिमी सभ्यता अभी ३०० वर्ष पुरानी भी नहीं हुई और भोगवादी सिद्धांतों के कारण विनाश के कगार पर जा पहुँची है। इस प्रकार परिणामों को देखते हुए भी बुद्धिमान व्यक्ति को संयम की आधारशीला पर खड़े भारतीय मनोविज्ञान को जीवन में लाना पड़ेगा, अन्यथा सर्वनाश होकर ही रहेगा।

पाश्चात्य मनोविज्ञान पिछले ३०० वर्षों से ही प्रकाशित हुआ है जबकि भारत का मनोविज्ञान ईसा के पूर्व २००० वर्ष पहले भी पूर्ण विकसित हो चुका था। भारतीय मनोविज्ञान की तुलना में पाश्चात्य मनोविज्ञान तुच्छ प्रतीत होता है। शरीर-रचना शास्त्र (Anatomy) और जीवविज्ञान (Physiology) के आधार पर पाश्चात्य मनोविज्ञान खड़ा है। प्रोफेसर सिग्मंड फ्रायड़ ने चेतातंत्र के भ्रूणशास्त्र का अभ्यास किया था। बाद में प्रोफेसर ब्रुअर (जो हिस्टीरिया और अन्य मानसिक रोगियों का अभ्यास करते थे) के साथ अध्ययन किया। फिर उन्होंने अवचेतन मन में झाँकने की (Psychoanalysis) पद्धति का आविष्कार किया। मनोविश्लेषण तो किया पर मानसिक रोगियों का मनोविश्लेषण किया और उस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों को सभी मनुष्यों पर लागू करने की भारी गलती की।

फ्रायड़ ने तो केवल मनोवैज्ञानिक मान्यता देकर व्यभिचारशास्त्र बनाया लेकिन तथाकथित दार्शनिक ने 'संभोग से समाधि' द्वारा व्यभिचार को आध्यात्मिक मान्यता देकर धार्मिक लोगों को भी भ्रष्ट किया। 'संभोग से समाधि' नहीं होती, सत्यानाश होता है। संयम से ही समाधि होती है।

फ्रायड़ ने अपनी तराजू पर सारी दुनिया को तौलने की गलती की है। उसका अपना जीवन-क्रम कुछ ऐसे ही बेतुके क्रम से विकसित हुआ। उसकी माता अमेलिया बड़ी खूबसूरत थी। उसने योकोव के साथ अपना दूसरा विवाह किया था। जब फ्रायड़ जन्मा तब वह २१ वर्ष की थी। बच्चे को वह बहुत प्यार करती थी। सम्भव है कुछ समझ आने पर उसके रूप में फ्रायड़ की यौनाकांक्षा भड़की हो और उसने माँ के प्यार को प्रणय माना हो। वह बाल्यकाल से ही उद्दण्ड और ईर्ष्यालु था।

अब पाश्चात्य मनोविज्ञानी भी भारतीय मनोविज्ञान का स्वीकार करने लगे हैं। भारतीय मनोविज्ञानी पतंजलि के सिद्धांतों पर चलनेवाले हजारों योगसिद्ध महापुरुष इस देश में हुए हैं, अभी भी हैं और आगे भी होते रहेंगे जबकि 'संभोग से समाधि' के मार्ग पर कोई योगसिद्ध महापुरुष हुआ हो ऐसा हमने तो नहीं सुना। उस मार्ग पर चलनेवाले पागल हुए हैं। ऐसे कई नमूने हमने देखे हैं।

एक दिन वह माता-पिता के सोने के कमरे में घुस गया और उन दोनों को विचित्र परिस्थिति में डालकर हड़बड़ा दिया। हो सकता है उसे इस स्थिति में ईर्ष्या उत्पन्न हुई हो। वह जब सात साल का था तब एक दिन बाप की ओर मुँह बनाकर चिढ़ाने

लगा । बाप ने उसे डाँटा और कहा कि यह छोकरा जिद्दी और निकम्मा बनता जाता है। ये घटनाएँ फ्रायड़ ने स्वयं लिखी हैं। इन घटनाओं के आधार पर फ्रायड़ कहता है : ''पुरुष बचपन से ही ईडिपस काम्प्लेक्स (Oedipus Complex) में यौन-आकांक्षा अथवा यौन-ईर्ष्या से ग्रसित रहता है। लड़का माँ के प्रति यौनाकांक्षा से प्रेरित रहता है, लड़की बाप के प्रति आकर्षित होती है जिसे Electra Complex नाम दिया । तीन वर्ष की आयु से ही बच्चा अपनी माँ के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करने के लिये लालायित रहता है। एकाध साल के बाद जब उसे पता चलता है कि उसकी माँ के साथ तो बाप का वैसा संबंध पहले से ही है अत: उसके मन में बाप के प्रति ईर्ष्या और घृणा जाग पड़ती है । यह विद्वेष उसकी अवचेतना में आजीवन बना रहता है । इसी प्रकार लड़की अपने बाप के प्रति सोचती है और माँ से ईर्ष्या करती है ।''

सिग्मंड फ्रायड़ ने मनोविश्लेषण तो किया, पर मानसिक रोगियों का मनोविश्लेषण किया और उस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों को सभी मनुष्यों पर लागू करने की भारी गलती की । फ्रायड़ ने अपनी तराजू पर सारी दुनिया को तौलने की गलती की है ।

फ्रायड़ कहता है : ''इस मानसिक अवरोध के कारण मनुष्य की गति रुक जाती है । ईडिपस कॉम्प्लेक्स उसके सामने तरह-तरह के अवरोध खड़े करता है । यह स्थिति अपवाद नहीं है वरन् साधारणतया प्राय: यही होता है ।''

यह कितना घृणित और हास्यास्पद प्रतिपादन है ! छोटा बच्चा यौनाकांक्षा से पीड़ित होगा सो भी अपनी माँ के साथ ? पशु-पक्षियों के शरीर में भी वासना तब उठती है जब उनके शरीर प्रजनन के योग्य सुदृढ़ हो जाते हैं । लेकिन मनुष्य के बालक को यह वृत्ति इतनी छोटी आयु में ही कैसे पैदा हो जाती है ? और माँ के साथ वैसी तृप्ति करने की उसकी शारीरिक-मानसिक स्थिति भी नहीं होती । फिर तीन वर्ष के बालक को काम-प्रयोग और उनमें माँ-बाप के संलग्न होने की जानकारी कहाँ से हो जाती है ? फिर वह यह कैसे समझ लेता है कि उसे बाप से ईर्ष्या करनी चाहिये ?

बच्चे द्वारा माँ का दूध पीने को ऐसे मनोविज्ञानियों ने रतिसुख के समकक्ष बताया है। यदि इस स्तनपान को रतिसुख गिना जाय तो आयु बढ़ने के साथ-साथ वह उत्कंठा भी प्रबल होती जानी चाहिये और वयस्क होने तक बालक को माता का दूध ही पीते रहना चाहिये । यह किस प्रकार संभव है ?

...तो ये ऐसे बेतुके प्रतिपादन हैं जिसके लिये भर्त्सना ही की जानी चाहिये ।

ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय निग्रह की महिमा सनातन धर्म ने ही गाई है ऐसी बात नहीं है। इस्लाम, ईसाइयत, जैन, सीख एवं तमाम धर्मग्रंथों ने भी संयम को अत्यंत महत्त्वपूर्ण बताया है । कुछ लोग मानते हैं कि ब्रह्मचर्य तो केवल योगियों, साधु-संतों के लिए है लेकिन भोगवादी पाश्चात्य देशों की अवदशा देखकर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हर मनुष्य यदि मनुष्यता से दिव्यता की ओर बढ़ना चाहता है तब तो उसे संयम का सहारा लेना ही पड़ेगा, लेकिन जो साधना करना नहीं चाहता वह भी यदि मनुष्य से पशु बनना न चाहता हो, पशु से पिशाच बनना न चाहता हो तो भी उसे संयम का अवलंबन लेना ही पड़ेगा । जो मनुष्य शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक प्रसन्नता और बौद्धिक सामर्थ्य बनाये रखना चाहते हों, ऐसे संसारी मनुष्यों के लिए भी **'यौवन सुरक्षा'** पुस्तक पढ़ना अत्यंत आवश्यक है ।

जो मनुष्य शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक प्रसन्नता और बौद्धिक सामर्थ्य बनाये रखना चाहते हों, ऐसे संसारी मनुष्यों के लिए भी 'यौवन सुरक्षा' पुस्तक पढ़ना अत्यंत आवश्यक है ।

जो लोग मानव समाज को पशुता में गिरने से बचाना चाहते हैं, भावि पीढ़ी का जीवन पिशाच होने से बचाना चाहते हैं, इस देश को एइड्स (AIDS) जैसी घातक

(शेष पृष्ठ २६ पर)

प्रपत्ति योग

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

'सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्त्तव्यकर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा । मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा । तू शोक मत कर ।'

(भगवद्गीता : १८.६६)

सम्पूर्ण भाव से ईश्वर की शरण में जाने से हमें सच्चा जीवन, सच्चा ज्ञान एवं सच्चा प्रेम मिलने लगता है ।

हम भगवान की शरण में हैं और फिर भी यदि अपनी रोजी-रोटी की चिंता करते हैं तो यह शरणागति को बट्टा लगाता है ।

तथाकथित आस्तिक भक्त ईश्वर में अपनी इच्छा मिला देने की बजाय अपनी इच्छा के मुताबिक भगवान को नौकर की नाईं नचाना चाहते हैं : 'प्रभु ! मुझे गाड़ी-बंगला दे दो... मेरा इतना काम कर दो... मेरी इतनी इच्छा पूरी कर दो...'

तथाकथित आस्तिक भक्त, ईश्वर में अपनी इच्छा मिला देने की बजाय अपनी इच्छा के मुताबिक भगवान को नौकर की नाईं नचाना चाहते हैं : 'प्रभु ! मुझे गाड़ी-बंगला दे दो... मेरा इतना काम कर दो... मेरी इतनी इच्छा पूरी कर दो...'

अरे ! तुम ईश्वर की शरण में हो या ईश्वर तुम्हारी शरण में हैं ? नहीं, ईश्वर की इच्छा को अपनी इच्छा समझो । वे जिस हाल में, जहाँ, जैसे भी रखें, खुशी से रहो । कोई फरियाद न करो । उसे कह दो कि : 'प्रभु ! तेरी मरजी पूरण हो ।'

अपने मन-बुद्धि प्रभु को अर्पण कर दो । जब तक मन और बुद्धि अपने लगते हैं तब तक हम चिंतित रहते हैं । जब तक हम शरीर और समाज के होते हैं तब तक हम चाहे यति हो जाएँ, चाहे जपी हो जाएँ, चाहे प्रधानमंत्री हो जाएँ फिर भी हमें शांति नहीं मिलेगी क्योंकि 'हम विद्वान हैं... हम बड़े योगी हैं... हम सदाचारी हैं... हम गुरु हैं...' ऐसा अहं हममें घुस जाता है ।

अहं को साथ में लेकर भगवान की शरणागति हो ही नहीं सकती । इतना तो सोचो : हवा हमने नहीं बनाई, सूरज हमने नहीं बनाया और जब हवा-सूरज हमने नहीं बनाये तो अनाज भी हमारे द्वारा बनाया हुआ कैसे हो सकता है ? अनाज भी सूरज की किरणों से तथा पृथ्वी के रस से उपजता है । जल उसका, हवा उसकी, अनाज उसका और पंचभूतों से बना यह शरीर भी उसका... फिर भी 'मेरा... हमारा...' करके हम धोखा खा रहे हैं ।

गीताकार ने हमें शास्त्रीय भक्ति समझायी है । उन्होंने कहा है कि : 'मन-बुद्धि के पावित्र्य के लिए ये दोनों चीजें पभु के चरणों में धर देनी चाहिए । प्रभु को मन-बुद्धि अर्पण करना यानी जीवन के संकल्प-विकल्प सब प्रभु को ही सौंप देना ।'

योगेश्वर श्रीकृष्ण ने सारी गीता सुनाने के बाद अपना वात्सल्य प्रेम छलकाते हुए अर्जुन से कहा कि : 'तेरा कर्म क्या है, तेरा धर्म क्या है- यह जानने के बाद भी तेरा तनाव दूर नहीं हुआ हो तो अच्छे में अच्छा उपाय यही है कि तू सब कर्त्तव्य-कर्मों को छोड़ दे । 'मैं क्षत्रिय हूँ'- इस धारणा को भी छोड़ दे । अपने कर्त्तव्य-धर्मादि का तू त्याग कर दे और केवल मेरी शरण में आ जा ।'

अपने को कर्त्ता मानकर चाहे हम धर्म करते रहें या पुण्य करते रहें चाहे सदाचारी बने रहें, परंतु करेंगे सब अविद्या को, अज्ञान को पकड़कर ही न ! और

जब तक अविद्या है तब तक भवसागर पार नहीं कर सकेंगे । जब तक जीव अहं के बंधन में फँसा रहता है तब तक जीवन-मरण के चक्कर से नहीं छूट सकता । इसलिए प्रभु की शरण में जाना ही सर्व दुःखों की औषधि है ।

अपने को कर्त्ता मानकर चाहे हम धर्म करते रहें या पुण्य करते रहें चाहे सदाचारी बने रहें, परंतु करेंगे सब अविद्या को, अज्ञान को पकड़कर ही न ! और जब तक अविद्या है, तब तक भवसागर पार नहीं कर सकेंगे ।

शरणागत भक्त के अस्तित्व को टिकाने में एवं उसके जीवन को उन्नत करने में अन्तर्यामी प्रभु स्वयं रस लेते हैं । लोग भगवान को याद करते हैं जबकि अनन्य भाव से भक्ति करनेवाले भक्तों को भगवान स्वयं याद करते हैं । एक पुलिस के संरक्षण से मनुष्य अपने को सुरक्षित मानता है, अपने पीछे दो फौजी तैनात करके मनुष्य अपने को सुरक्षित मानता है तो स्वयं परमात्मा जिनका ध्यान रखते हैं वे भक्त कितने सुरक्षित होंगे !

काकभुशुण्डिजी पूर्व जन्म में ब्राह्मण थे । वे गये लोमश ऋषि के पास उपदेश लेने । लोमश ऋषि 'आत्मा क्या है ? परमात्मा क्या है ? जीव क्या है ? ब्रह्म क्या है ?' आदि ज्ञानयुक्त उपदेश-वचन सुना ही रहे थे कि ब्राह्मण लोमश ऋषि की बात आधी सुनकर ही बीच में बोल पड़ा :

लोग भगवान को याद करते हैं जबकि अनन्य भाव से भक्ति करनेवाले भक्तों को भगवान स्वयं याद करते हैं ।

''मुझे तो भगवान की भक्ति कैसे करनी चाहिए- यह बताइये ।''

इस प्रकार लोमश ऋषि के सत्संग में बार-बार बीच में बोलकर ब्राह्मण ने व्यवधान पैदा किया तब लोमश ऋषि नाराज हो गये और क्रोधित होकर ब्राह्मण को श्राप दे दिया कि :

''क्या कौवे की नाईं कैं... कैं... करता रहता है ? जा, कौवा हो जा ।''

"क्या कौवे की नाईं कैं... कैं... करता रहता है ? जा, कौवा हो जा ।"

कौवा हो जाने का श्राप मिलने पर भी ब्राह्मण जरा भी चिंतित न हुआ । यह देखकर आश्चर्य में पड़कर लोमश ऋषि ने पूछा :

''इतना भारी श्राप मिलने पर भी तुझे कोई असर नहीं हुआ ? दुःख नहीं हुआ ?''

ब्राह्मण : ''जो कुछ भी होता है वह भगवान की सत्ता से ही होता है । आपने मुझे श्राप तो दिया लेकिन इसमें भी मेरे प्रभु की इच्छा ही छुपी हुई है और इसमें मेरा कल्याण अवश्य ही है ।''

लोमश ऋषि का हृदय पिघल गया । वे बोले :

''हे वायसराज ! तुम्हें श्राप मिला फिर भी तुमने ईश्वर की भक्ति के प्रति अखंडता बनाये रखी । अत: तुम जहाँ रहोगे वहाँ एक योजनपर्यन्त कलियुग का प्रभाव नहीं रहेगा क्योंकि तुम वास्तव में प्रभु की शरण हो । कौवा होने के बावजूद भी तुम्हारी भक्ति, तुम्हारी शक्ति, तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारा ध्यान अखंड रहेगा । जब तुम चाहोगे तब इच्छानुसार शरीर धारण कर सकोगे । प्रलयकाल की अग्नि भी तुम्हें जला नहीं पाएगी । प्रलयकाल के मेघ तुम्हें पिघला नहीं सकेंगे । सृष्टि में हाहाकार हो जाएगा लेकिन तुम्हारा चित्त ईश्वरपरायण होने से तुम पर माया का कोई प्रभाव नहीं होगा ।''

खेद तब होता है जब हम अलग होते हैं, जब हमारा अलग व्यक्तित्व होता है । जब अपना व्यक्तित्व ही विराट में मिला दिया फिर खेद करने की क्या आवश्यकता ? मान हो रहा है तो उसका, अपमान हो रहा है तो उसका । हम तो सिर्फ इन सबको देखनेवाले साक्षीस्वरूप आत्मा हैं । क्या मैनेजर को सेठ की तरह नफे-नुकसान की चिंता या तनाव होता है ? नहीं । ऐसे ही भगवान की शरण जाने से सारी चिंताएँ-मुसीबतें

अपनी नहीं रहतीं, भगवान की हो जाती हैं । चिंता तब होती है जब ऊपर-ऊपर से अपने कर्त्तव्य पर, निश्चय पर, अहं पर भरोसा हो ।

जब हम अपना आधार पकड़े हुए रहते हैं तब अंदर से हम सचमुच में निराधार ही होते हैं और यदि हम सचमुच में अंदर से अपना आधार छोड़े हुए होते हैं तो सम्पूर्ण प्रकार से सर्वाधार के आधार में हो जाते हैं । जो पूर्णतया ईश्वर की शरण में आता है, ईश्वर के साथ उसका तादात्म्य हो जाता है । ऐसा साधक 'मुझमें यह कमी है... मैं पापी हूँ...' - ऐसा करके सिकुड़ता नहीं है और 'मुझमें यह गुण है... मैं पुण्यवान् हूँ...'- ऐसा करके अहं भी नहीं करता । सिकुड़ान और अहं, राग और द्वेष न होने के कारण उसके चित्त में समता आ जाती है ।

जैसे, पतिव्रता स्त्री का जीवन उसके पति के चरणों में समर्पित होता है । वह सास को खिलाती है तो पति के नाते, देवर को कॉलेज में ले जाने के लिए टिफिन बनाकर देती है तो पति के रिश्ते । पति का भाई है न ! घर साफ-सुथरा रखती है, खुद शृंगार करती है तो पति की प्रसन्नता के लिए... उसकी प्रत्येक चेष्टा अपने पति को खुश रखने के लिए ही होती है ।

ऐसे ही जो भगवान का शरणागत भक्त है वह नौकरी-धंधा करता है तो भगवान के लिए, शरीर तंदुरुस्त रखता है तो भगवान के लिए । उसकी वृत्ति भगवदाकार हो जाती है । उसमें फिर पाप और पुण्य कहाँ ? सुख और दुःख कहाँ ? भय और चिंता कहाँ ? उद्वेग और अशांति कहाँ ? जो भगवान की शरण में होता है वह वास्तव में महा भाग्यशाली होता है ।

"जो कुछ भी होता है वह भगवान की सत्ता से ही होता है । आपने मुझे श्राप तो दिया लेकिन इसमें भी मेरे प्रभु की इच्छा ही छुपी हुई है ।"

जो पूर्णतया ईश्वर की शरण में आता है, ईश्वर के साथ उसका तादात्म्य हो जाता है । ऐसा साधक 'मैं पापी हूँ' - ऐसा करके सिकुड़ता नहीं है और मैं पुण्यवान् हूँ' - ऐसा करके अहं भी नहीं करता ।

"वृक्ष चाहे भाग्यशाली हो या न हो और लता चाहे भाग्यशाली हो या न हो, किंतु दोनों की छाया में बैठकर जो मुसाफिर अपनी थकान मिटाता है, वह लक्ष्मण जरूर महा भाग्यशाली है ।"

श्रीरामजी, सीता माता व लक्ष्मणजी वनवास के दौरान् अरण्य में थे । एक दिन श्रीरामजी और सीताजी बैठकर वन की शोभा निहार रहे थे ।

श्रीरामजी ने सीताजी से कहा : ''सीते ! देख रही हो, लता के सुहावने पुष्प, हरी-भरी पत्तियाँ, टहनियाँ इस वृक्ष पर अपना कितना रंग जमा रही हैं ! यह वृक्ष कितना भाग्यशाली है ! लता के कारण वृक्ष की शोभा बढ़ गई है । वृक्ष को लता का सहारा मिला है ।''

इस पर सीताजी ने कहा : ''नाथ ! ऐसा नहीं है । यदि वृक्ष न होता तो लता कोने में ही सिकुड़कर रह जाती । वृक्ष ने ही लता को ऊँचा उठने में सहारा दिया है, तभी तो लता के ये हरे-भरे पत्ते, रंगबिरंगे फूल दूर से भी दिखाई पड़ते हैं । लता वृक्ष के सहारे से ही शोभायमान बनी है ।''

श्रीरामजी : ''नहीं, वृक्ष भाग्यशाली है ।''

सीताजी : ''नहीं, लता भाग्यशाली है ।''

दोनों में मीठा झगड़ा हो रहा था । दोनों अपनी बात पर अडिग थे । इतने में ही लखनलाला आ गये । श्रीराम ने उनसे पूछा :

''लक्ष्मण ! तुझे क्या लगता है ? वृक्ष लता के सहारे बड़भागी बना है या लता वृक्ष को पाकर भाग्यशाली

(शेष पृष्ठ २९ पर)

धर्मात्मा की ही कसौटियाँ क्यों ?

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

प्राय: भक्तों के जीवन में यह फरियाद बनी रहती है कि हम तो भगवान की इतनी भक्ति करते हैं, रोज सत्संग करते हैं, नि:स्वार्थ भाव से गरीबों की सेवा करते हैं, धर्म का यथोचित अनुष्ठान करते हैं फिर भगवान हमारी ही कसौटियाँ क्यों करते हैं ? आपका यह मानना-जानना सत्य है कि कसौटियाँ भक्तों की ही (क्यों) होती हैं ? आज हम इस विषय पर चर्चा करेंगे कि क्यों भक्तों का जीवन कसौटियों से भरा होता है ।

बचपन में जब तुम स्कूल में दाखिल हुए थे तो 'क... ख... ग...' आदि का अक्षरज्ञान तुरन्त ही हो गया था कि विघ्न-बाधाएँ आयी थीं ? लकीरें सीधी खींचते थे कि कलम टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती थी ? जब सायकल चलाना सीखा था तब भी तुम एकदम सीखे थे क्या ? नहीं । कई बार गिरे, कई बार उठे । चालनगाड़ी को पकड़ा, किसीकी अंगुली पकड़ी तब चलने के काबिल बने और अब तो मेरे भैया ! तुम दौड़ में भाग ले सकते हो ।

अब मेरा सवाल है कि जब तुम चलना सीखे तो विघ्न क्यों आये ? क्यों स्कूल में परीक्षा के बहाने कसौटियाँ होती थीं ? तुम्हारा जवाब होगा कि : 'बापूजी ! हम कमजोर थे, अभ्यास-ज्ञान नहीं था ।'

ऐसे ही मेरे साधकों ! तुमने परमात्मा को पाने की दिशा में कदम रख दिया है । तुम अभी **पचास वर्ष के छोटे बच्चे** हो, तुम्हें इस जगत का पता नहीं, ईश्वर के लिये अभी तुम्हारा प्रेम कमजोर है, नियम में सातत्य और दृढ़ता की जरूरत है । अहंकार-काम-क्रोध के तुम जन्मों के रोगी हो, इसीलिये तो तुम्हारी कसौटियाँ होती हैं और विघ्न आते हैं ताकि तुम मजबूत बन सको । साधक तो विघ्न-बाधाओं से खेलकर मजबूत होता है । कसौटियाँ इसलिये कि तुम प्रभु को प्यार करते हो और वे तुम्हें प्यार करते हैं । वे तुम्हारा परम कल्याण चाहते हैं । यही तो वजह है कि वे तुम्हें परेशानियाँ देकर, तुम्हारा विवेक-वैराग्य जगाकर, तुमसे नश्वर संसार की आसक्ति छुड़ाना चाहते हैं ।

> *कसौटियाँ इसलिये कि तुम प्रभु को प्यार करते हो और वे तुम्हें प्यार करते हैं, वे तुम्हारा परम कल्याण चाहते हैं । यही तो वजह है कि वे तुम्हें परेशानियाँ देकर, तुम्हारा विवेक-वैराग्य जगाकर, तुमसे नश्वर संसार की आसक्ति छुड़ाना चाहते हैं ।*

माता कुन्ता भगवान श्रीकृष्ण से प्रार्थना करती थीं :

विपद: सन्तु न: शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भक्तो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥

'हे जगद्गुरो ! हमारे जीवन में सर्वदा पद-पद पर विपत्तियाँ आती रहें क्योंकि विपत्तियों में ही निश्चित रूप से आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन हो जाने पर फिर जन्म-मृत्यु के चक्कर में नहीं आना पड़ता है ।'

एक बीज को वृक्ष बनने तक कितने विघ्न आते हैं ! कभी पानी मिला कभी नहीं, कभी आँधी आयी, कभी तूफान आया, कभी पशु-पक्षियों ने मुँह-चोंचें मारीं... ये सब सहते हुए भी वृक्ष खड़े हैं । तुम भी कसौटियों को सहन करते हुए, उन पर खरे उतरते हुए ईश्वर के लिये खड़े हो जाओ तो तुम ब्रह्म हो जाओगे । परमात्मा की प्राप्ति की दिशा में कसौटियाँ तो सचमुच कल्याण की परम सोपान हैं । जिसे तुम प्रतिकूलता कहते हो सचमुच वह तो वरदान है क्योंकि अनुकूलता में विवेक सोता है और दु:ख में विवेक जागता है । कसौटियों के समय घबराने से तुम दुर्बल हो जाते हो, तुम्हारा मनोबल क्षीण हो जाता है ।

हम लोग पुराणों की कथाएँ सुनते हैं । ध्रुव तप कर रहा था । असुर लोग डराने के लिये आये लेकिन ध्रुव डरा नहीं । सुर लोग विमान लेकर प्रलोभन देने के लिये आये लेकिन ध्रुव फिसला नहीं । वह विजेता हो गया । ये कहानियाँ हम सुनते हैं, सुना भी देते हैं लेकिन समझते नहीं कि ध्रुव जैसा बालक दुःख से घबड़ाया नहीं और सुख में फिसला नहीं । उसने दोनों का सदुपयोग कर लिया तो ईश्वर उसके पास प्रकट हो गये ।

परमात्मा की प्राप्ति की दिशा में कसौटियाँ तो सचमुच कल्याण की परम सोपान हैं । जिसे तुम प्रतिकूलता कहते हो, सचमुच वह तो वरदान है क्योंकि अनुकूलता में विवेक सोता है और दुःख में विवेक जागता है ।

हम क्या करते हैं ? जरा-सा दुःख पड़ता है तो दुःख देनेवाले पर लांछन लगाते हैं, परिस्थितियों को दोष देते हैं अथवा अपने को पापी समझकर अपने को ही कोसते हैं । कुछ कायर तो आत्महत्या करने तक का सोच लेते हैं । कुछ पवित्र होंगे तो किसी संत-महात्मा के पास जाकर मुक्ति पाते हैं । यदि आप प्रतिकूल परिस्थितियों में संतों के द्वार जाते हैं तो समझ लीजिए कि आपको पुण्यमिश्रित पापकर्म का फल भोगना पड़ रहा है क्योंकि कसौटी के समय जब परमात्मा याद आता है तो डूबते को सहारा मिल जाता है । नहीं तो कोई शराब का सहारा लेता है तो कोई और किसीका... मगर इससे न तो समस्या हल होती है और न ही शांति मिल पाती है क्योंकि जहाँ आग है वहाँ जाने से शीतलता कैसे महसूस हो सकती है ? तुम कसौटी के समय धैर्य खोकर पतन की खाई में गिर जाते हो और फिर वहीं फँसकर रह जाते हो ।

इस गूढ़ रहस्य को यदि भलीभाँति समझ लोगे तो आप हमेशा के लिए मुसीबतों से, कसौटियों से पार हो जाएँगे । बात है जरूर साधारण लेकिन अगर शिरोधार्य कर लेंगे तो आपका काम बन जाएगा ।

जो गुरुओं के द्वार पर जाते हैं उनको कसौटियों से पार होने की कुँजियाँ सहज ही मिल जाती हैं । इससे उनके दोनों हाथों में लड्डू होते हैं । एक तो संत सान्निध्य से हृदय की तपन शांत होती है, समस्या का हल मिलता है, साथ-ही-साथ जीवन को नयी दिशा भी मिलती है । तभी तो स्वामी रामतीर्थ कहते थे :

''हे परमात्मा ! रोज ताजा मुसीबत भेजना ।''

आज आप इस गूढ़ रहस्य को यदि भलीभाँति समझ लेंगे तो आप हमेशा के लिए मुसीबतों से, कसौटियों से पार हो जाएँगे । बात है जरूर साधारण लेकिन अगर शिरोधार्य कर लेंगे तो आपका काम बन जाएगा ।

आपने देखा होगा कि जिस खूँटे के सहारे पशु को बाँधना होता है उसे घर का मालिक हिलाकर देखता है कि कहीं पशु भाग तो नहीं जाएगा । फिर घर की मालिकिन देखती है कि उचित जगह पर तो ठोका गया है या नहीं । फिर ग्वाला देखता है कि मजबूत है या नहीं । एक खूँटे को जिसके सहारे पशु बाँधना है, उसे इतने लोग देखते हैं, उसकी कसौटियाँ करते हैं, तो जिस भक्त के सहारे समाज को बाँधना है, समाज से अज्ञान भगाना है उस भक्त की, भगवान-सद्गुरु यदि कसौटियाँ नहीं करेंगे तो भैया ! कैसे काम चलेगा ?

जिसे वो देना चाहता है, उसीको आजमाता है।
खजाने रहमतों के इसी बहाने लुटाता है ॥

जब एक बार सद्गुरु की, भगवान की शरण आ गये तो फिर क्या घबड़ाना ? जो शिष्य भी है और दुःखी भी है तो मानना चाहिए कि वह अर्धशिष्य है अथवा निगुरा है । जो शिष्य भी है और चिन्तित भी है तो मानना चाहिए कि उसमें समर्पण का अभाव है । मैं भगवान का, मैं गुरु का तो चिन्ता मेरी कैसे ? चिन्ता भी भगवान की हो गई, गुरु की हो गई । हम भगवान के हो गये तो कसौटी, बेईज्जती हमारी कैसे ? अब तो भगवान् को ही सब संभालना है । जैसे, आदमी कारखाने का

कर्मचारी हो जाता है तो कारखाने को लाभ-हानि जो भी हो, उसे तो वेतन मिलता ही है । ऐसे ही जब हम ईश्वर के हो गये तो हमारा शरीर ईश्वर का साधन हो गया । खेलने दो उस परमात्मा को तुम्हारे जीवनरूपी उद्यान में । बस, तुम तो अपनी ओर से पुरुषार्थ करते जाओ । जो तुम्हारे जिम्मे आये उसे तुम कर लो... और जो ईश्वर के जिम्मे है वह उन्हें करने दो... फिर देखो, तुम्हारा काम कैसे बन जाता है । वे लोग मूर्ख हैं जो भगवान को कोसते हैं और वे लोग धन्य हैं जो हर हाल में खुश रहकर अपने-आप में तृप्त रहते हैं । गरीबी है तो क्या ? खाने को, पहनने को नहीं है तो क्या ? यदि तुम्हारे दिल में गुरुओं के प्रति श्रद्धा है, उनके वचनों को आत्मसात् करने की लगन है तो तुम सचमुच बड़े ही भाग्यशाली हो । सच्चा भक्त भगवान से उनकी भक्ति के अलावा किसी और फल की कभी याचना ही नहीं करता ।

यदि तुम्हारे दिल में गुरुओं के प्रति श्रद्धा है, उनके वचनों को आत्मसात् करने की लगन है तो तुम सचमुच बड़े ही भाग्यशाली हो । सच्चा भक्त भगवान से उनकी भक्ति के अलावा किसी और फल की याचना ही नहीं करता ।

जिसे वह इश्क देता है, उसे और कुछ नहीं देता है ।
जिसे वह इसके काबिल नहीं समझता, उसे सब कुछ देता है ॥

योगवाशिष्ठ में आता है कि चिन्तामणि के आगे जो चिन्तन करो, वह चीज मिलती है लेकिन संतपुरुष के आगे जो चीज माँगोगे वही चीज वे नहीं देंगे, मगर जिसमें तुम्हारा हित होगा वही देंगे । यदि तुम्हारी निष्ठा है, संयम है, सत्य का आचरण है, सेवा का सद्गुण है तो वे सबसे पहले तुम्हारी कसौटी हो, ऐसी परिस्थितियाँ देंगे ताकि इन सद्गुणों के सहारे तुम सत्यस्वरूप परमात्मा को पा लो, परमात्मा को पाने की तड़पन बढ़ा दो क्योंकि वे तुम्हारे परम हितैषी हैं । सद्गुरुओं का ज्ञान तुम्हें ऊपर उठाता है । परिस्थितियाँ हैं सरिता का प्रवाह, जो तुम्हें नीचे की ओर घसीटती हैं और सद्गुरु 'पम्पिंग स्टेशन' हैं जो तुम्हें हरदम ऊपर उठाते रहते हैं ।

योगवाशिष्ठ में आता है कि चिन्तामणि के आगे जो चिन्तन करो, वह चीज मिलती है लेकिन संतपुरुष के आगे जो चीजें माँगोगे वे ही चीजें नहीं देंगे, मगर जिनमें तुम्हारा हित होगा वे ही देंगे ।

अज्ञानी के रूप में जन्म लेना कोई पाप नहीं, मूर्ख के रूप में पैदा होना कोई पाप नहीं, लेकिन मूर्ख रहकर सुख-दुःख की थप्पड़ें खाना और जीर्ण-शीर्ण होकर, प्रभु से विमुख होकर मर जाना महा पाप है ।

अज्ञानी के रूप में जन्म लेना कोई पाप नहीं, मूर्ख के रूप में पैदा होना कोई पाप नहीं, लेकिन मूर्ख रहकर सुख-दुःख की थप्पड़ें खाना और जीर्ण-शीर्ण होकर, प्रभु से विमुख होकर मर जाना महा पाप है ।

संक्षेप में, मेरे कहने का अभिप्राय इतना ही है कि मनुष्य जन्म मिला है, सद्गुरु का सान्निध्य और परमतत्त्व का ज्ञान पाने का दुर्लभ मौका भी हाथ लगा है और सबसे बड़ी हर्ष की बात यह है कि तुममें उस परमतत्त्व को पाने की जिज्ञासा भी है तो फिर दुःख, चिन्ता और परेशानियों से क्या घबडाते हो ? यह तो वे कसौटियाँ हैं जो आपको निखारकर चमकाना चाहती हैं । हिम्मत, साहस, संयम की तलवार से जीवनरूपी कुरुक्षेत्र में आगे बढ़ते जाओ... तुम्हारी निश्चित ही विजय होगी, तुम दिग्विजयी होंगे, तत्त्व के अनुभवी होंगे, तुममें और भगवान में कोई फासला नहीं रहेगा । सद्गुरु का अनुभव तुम्हारा अनुभव हो जाए... यही तुम्हारे सद्गुरुओं का पवित्र प्रयास है ।

तेरे दीदार के आशिक समझाये नहीं जाते हैं ।
कदम रखते हैं तेरे द्वार पर तो लौटाये नहीं जाते हैं ॥

❀

भोगपरायण मनुष्यों को अथाह अशांति, अनवरत दुःख, पापाचरण, मरणोत्तर नरक, आसुरी योनियों की प्राप्ति सहज में होती है ।
– श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार

ईश्वर का अस्तित्व

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

इलाहाबाद के अल्फट पार्क में प्रत्येक रविवार को बालकदास नाम के महात्मा सत्संग करते थे । सैम्युअल सेक्सन नामक एक एम. ए. का विद्यार्थी उस सत्संग-सभा में आकर तर्क-वितर्क करता था कि भगवान वगवान कुछ नहीं है ।

तब महात्मा बालकदास कहते : ''हमें तुम्हारे तर्कों-कुतर्कों से कुछ भी लेना-देना नहीं है । हमें तो सत्संग करने-सुनने में आनंद आता है इसलिए सत्संग करते-सुनते हैं । तुम यहाँ से जाओ ।''

सैम्युअल सेक्सन का वास्तविक नाम श्यामलाल सक्सेना था किन्तु पादरियों के चक्कर में आकर नाम बदल दिया था । पाश्चात्य जगत की चकाचौंध से प्रभावित सैम्युअल ने सत्संग में विक्षेप डालना नहीं छोड़ा । खुद हिन्दू होते हुए भी ईसाइयत के प्रभाव से हिन्दू धर्म एवं ईश्वर के खिलाफ बोलने में वह अपनी चतुराई समझता था ।

महात्मा बालकदास सज्जन थे, सीधे सादे पुरुष थे और सोचते थे कि 'क्या बोलना ?' लेकिन वे जितने ही शांत रहते उतना ही अधिक वह विक्षेप डालता ।

एक बार वहाँ दैनिक अखबार के मुख्य संपादक भट्टजी आये और उन्होंने सैम्युअल सेक्सन के सारे तर्कों को काटते हुए एवं तर्क द्वारा ही उसे पराजित करते हुए कहा : ''बोल, भगवान हैं कि नहीं ? हिन्दू धर्म के सत्शास्त्र और गीतादि सत्य हैं कि नहीं ?''

सैम्युअल सेक्सन : ''तर्क से तो मुझे मानना पड़ता है लेकिन मेरा हृदय स्वीकार नहीं करता है ।''

भट्टजी चिढ़कर चले गये । दूसरे इतवार को पुन: बालकदासजी का सत्संग था तब वह सैम्युअल सेक्सन पुन: आ धमका और तर्क करने लगा । उसी समय एक संतपुरुष वहाँ आये और बोले :

''तू बोलता है कि ईश्वर नहीं है तो इस बात का क्या प्रमाण है ? क्या तूने चौदह लोकों में जाकर देख किया ?''

सैम्युअल सेक्सन : ''महाराज ! ईश्वर है इसका प्रमाण आप ही बतावें ।''

संतपुरुष : ''ईश्वर है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है यह धरती । यह पृथ्वी किसी मनुष्य की बनावट नहीं है, सूर्य किसी मनुष्य की बनावट नहीं है, चंद्र, तारे, नक्षत्र, तेज, आकाशादि किसी मनुष्य की रचना नहीं है । जैसे घड़ी को देखने से ही पता चल जाता है कि उसे बनानेवाला कोई है, फिर भले ही तुमने उसके बनानेवाले को और उसे बनाते हुए नहीं देखा हो । वैसे ही सूर्य, चंद्र, आकाशादि पाँच भूतों को बनाते समय और उसे बनानेवाले को तुमने नहीं देखा लेकिन उसकी कारीगरी को देखकर तुम्हें मानना पड़ेगा कि उसे भी कोई बनानेवाला है और वही ईश्वर है ।

ईश्वर के अस्तित्व के विषय का दूसरा अकाट्य प्रमाण स्वयं मनुष्य है । कोई भी मनुष्य यह नहीं सोचता कि 'मैं नहीं हूँ ।' 'यह नहीं है... वह नहीं है...' ऐसा तो वह कहता है किन्तु कभी यह नहीं कहता कि 'मैं नहीं हूँ ।' यह 'मैं' जहाँ से उठता है वही ईश्वर है, मूर्ख ! फिर तू माने चाहे न माने । अच्छा, तू ही बता कि सूर्य तो पृथ्वी से लाखों मील दूर है फिर भी सूर्योदय के साथ ही कमल क्यों खिल जाते हैं ?''

''यह सब तो मैं नहीं जानता ।''

''अरे ! जब तू इतना भी नहीं जानता, सूर्य और कमल जो दिख रहे हैं उसके विषय में भी तू नहीं जानता है तो फिर जो सबका आधार है उस अज्ञात चैतन्य के विषय में तू यह कैसे कह सकता है कि वह नहीं है ?''

तब सैम्युअल सेक्सन ने कहा : ''महाराज ! मुझे

कोई अनुभव करा दो तो मैं मानूँ ।''

महात्मा : ''पहले तू मान फिर अनुभव होगा । जैसे पहले तूने माना था कि पृथ्वी गोल है फिर पढ़ते-पढ़ते तू जान सका कि पृथ्वी गोल है । वैसे ही पहले तू मान कि ईश्वर है फिर जान सकेगा ।''

''नहीं, पहले मुझे ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव हो जाये, ऐसा कर दो ।''

महाराज भी आ गये अपने महाराजपने में और बोले :

''अगर ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव करना है तो एक काम कर । आठ दिन तक रोज एक घण्टे के लिए ध्रुव तारे के सामने त्राटक कर । करेगा मेरा प्रभु तो तुझे कोई-न-कोई चमत्कार दिखेगा ।''

दूसरे इतवार को जब सत्संग का समय हुआ तब वह सैम्युअल सेक्सन एक बड़ा-सा लिफाफा हाथ में लेकर आया जिसके ऊपर लिखा था : 'यह एक लम्बी चिट्ठी है जिसे पढ़ने का आप कष्ट कीजिएगा क्योंकि मैं बोल नहीं पाता । विश्वास से आपको अर्पण करता हूँ । कृपया जरूर पढ़ें ।'

जब चिट्ठी खोलकर पढ़ी तो जानते हो उसमें क्या लिखा था ? उसमें लिखा था :

''महाराज ! आपने ध्रुव तारे पर त्राटक करने का उपदेश दिया था । जब मैं पहले दिन बैठा तो मुझे कोई विशेष अनुभव नहीं हुआ, मन इधर-उधर भाग रहा था । दूसरे दिन थोड़ा एकाकार होने का प्रयास किया फिर आकर अपने कमरे में सो गया । ज्यों-ही आँख थोड़ी बंद हुई तो मुझे विचित्र-विचित्र रंग दिखने शुरू हो गये । मैं सोच भी नहीं सकता था ऐसे दृश्य प्रगट हो गये और तीसरे दिन तो गजब हो गया !

तीसरे दिन जब ठीक-ठीक त्राटक किया और आकर अपने पलंग पर सोया तो थोड़ी ही देर में मेरा पालतू कुत्ता मेरे कमरे में भौंकता-भौंकता घुस गया और कूदकर मेरे पेट पर बैठ गया । अपना मुँह मेरे कान के समीप लाकर मानुषी भाषा में बोलने लगा : ''ईश्वर के होने का इससे बड़ा प्रमाण और क्या चाहता है, मूर्ख !''

कुत्ते की जबान से मनुष्य की भाषा निकलना अवश्य ही किसी ऐरे-गैरे मनुष्य या वैज्ञानिक का काम नहीं है । कोई अज्ञात तत्त्व अवश्य है । वही ईश्वर है ।

कुत्ता इतना ही बोलकर नीचे उतर गया और मानो मुझ पर नाराज होता हुआ थोड़ा-सा भौंका और आँसू बहाते हुए 'राम' कहकर सदा के लिए श्रीराम के चरणों में लीन हो गया ।

महाराज ! मैंने चमत्कार तो देखा लेकिन मेरी जबान तभी से बंद हो गयी है, मैं गूँगा हो गया हूँ इसलिए आपको इतनी बड़ी चिट्ठी पढ़ने का कष्ट दे रहा हूँ । अब आप कृपा करके कोई उपाय बताओ ताकि मेरी जबान खुल जाये ।''

महाराज : ''मैं उपाय तो जरूर बताऊँगा लेकिन दो शर्तें हैं ।''

सैम्युअल सेक्सन ने लिखकर बताया कि मुझे आपकी शर्तें मंजूर हैं ।

तब महात्मा बोले : ''तार्किकों के चक्कर में आना छोड़ दे । गीता-रामायणादि शास्त्र तू नहीं समझता है फिर भी ये सत्य हैं अतः इन्हें कपोलकल्पित कहकर इनका उपहास करना छोड़ दे और तू ईश्वर के बारे में नहीं जानता फिर भी ईश्वर हैं । अतः 'ईश्वर नहीं है' ऐसा इस जुबान से तू कभी नहीं बोलेगा - यह वचन दे और किसीके बहकाने पर भी हिन्दू धर्मग्रंथों की कभी निंदा नहीं करेगा । अगर तू ऐसा कर सके, इन शर्तों का स्वीकार कर सके तभी तुझे तेरी खोयी हुई वाणी वापस मिल सकती है ।''

विधर्मी हमारे देश में आकर लाखों करोड़ों रूपये

विधर्मी हमारे देश में आकर लाखों करोड़ों रूपये खर्च करके हमारे धर्म का कुप्रचार करते हैं और अपने धर्म की जाल फैलाते हैं जबकि हमारे संत-महापुरुष जो समाज को सुख, शान्ति और आरोग्यता की कुँजियाँ देते हैं उनके लिए आलोचना करने में हमारे ही लोगों को शर्म तक नहीं आती ।

खर्च करके हमारे धर्म का कुप्रचार करते हैं और अपने धर्म की जाल फैलाते हैं जबकि हमारे संत-महापुरुष जो समाज को सुख, शान्ति और आरोग्यता की कुँजियाँ देते हैं उनके लिए आलोचना करने में हमारे ही लोगों को शर्म तक नहीं आती । हमारे ही लोग हमारे ही संतों के पाँव उखाड़ने में कितने-कितने षड़यंत्र रचते हैं ! उन्हें समाज सावधान कर दे यह समाज का कर्त्तव्य है । अन्यथा समाज छिन्न-भिन्न हो जायेगा ।

समाज को उन्नत करनेवाला यदि कोई है तो वह ईश्वर है, समाज को एकसूत्र में बाँध रखनेवाला यदि कोई है तो वह ईश्वर का अस्तित्व है और समाज को यदि कोई सही दिशा देनेवाला है तो वह संतों का संग है । समाज और संत के बीच जो सेतु का कार्य करते हैं वे तो भाग्यशाली हैं किंतु जो लोग संत एवं समाज के बीच सेतु तो नहीं बनते वरन् खाई खोदने का काम करते हैं उन्हें खरी सुनाने का हर नागरिक का कर्त्तव्य है... हरि ॐ...ॐ... ॐ...

महात्मा ने सैम्युअल सेक्सन से कहा : ''मैं हिन्दू धर्म की, हिन्दू संतों की और भगवान की बुराई नहीं करूँगा, यह कसम खा ।''

महात्मा के कहने पर सैम्युअल सेक्सन ने यह कसम खाई । तब पुनः महात्मा ने कहा :

''जा, ध्रुव तारे के सामने फिर से बैठ । एकटक निहारते हुए प्रार्थना करना कि 'अब मैं संतों के प्रति, भगवान के प्रति, शास्त्रों के प्रति मन में दुर्भाव नहीं लाऊँगा, मुझे क्षमा मिले ।' इस प्रकार क्षमायाचना कर तो तू ठीक हो जायेगा ।''

दो-तीन दिन में उसकी जुबान ठीक हो गयी और वह बोलने लग गया । उसने अपना नाम पुनः सैम्युअल सेक्सन से श्यामलाल सक्सेना कर दिया और आजीवन लोगों को भगवान के अस्तित्व का संदेश देता रहा तथा हिन्दू धर्मग्रंथों का प्रचार-प्रसार करता रहा ।

(यह कुछ वर्ष पूर्व की ही घटित घटना है और 'गीता प्रेस-गोरखपुर' के 'ईश्वर की सत्ता और महत्ता' विषयक ग्रंथ में इसका सविस्तार वर्णन है ।)

ब्राह्मणपुत्र मेधावी

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥

'मुझ परमेश्वर में अनन्य योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति करके एकांत देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्य के समुदाय में प्रेम का न होना... (यह ज्ञान है, मोक्ष का मार्ग है ।)

(भगवद्गीता : १३.१०)

इन्द्रियों एवं मन की तुच्छ वृत्तियों को संतुष्ट करने में लगना, आत्मानंद को पाने के बजाय अपने को विषय-विकारों के कीचड़ में गिराना- इसे व्यभिचार कहते हैं । मनुष्य जन्म के मुख्य लक्ष्य परमतत्त्व को पाने के लिए कोशिश न करके संसार में आसक्त होकर जन्म गँवा देना ही व्यभिचार कहा गया है ।

प्रतिकूलता में ईश्वर को याद किया, साधन-भजन के मार्ग पर थोड़ी यात्रा की, परंतु जैसे ही प्रतिकूलता कम हुई कि फिर से भोगों में लंपट हो गये... या फिर, संसार में अनुकूलता है, सुख-सुविधाएँ हैं तो ईश्वर को पाने के लिए तत्परता दिखाई परंतु जैसे ही अनुकूलता कम हुई, असुविधाएँ आयीं तो ईश्वर को भुला दिया और संसार को ठीक करने में लग गये । इसे व्यभिचारिणी भक्ति कहा गया है । अनुकूलता आये चाहे प्रतिकूलता आये- दोनों ही अवस्था में जो परमतत्त्व को पाने के लिए तत्पर रहता है, संसार में चाहे सुख-सुविधा मिले चाहे दु:ख मिले, साधन-भजन के मार्ग पर जो यात्रा जारी रखता है ऐसा भक्त अव्यभिचारिणी भक्ति करता है ।

व्यभिचारिणी भक्ति करनेवाला साधक थोड़ी-सी अनुकूलता या प्रतिकूलता आने पर साधन छोड़कर संसार में गिर जाता है या तो साधन के प्रकार बदलता रहता है । अव्यभिचारिणी भक्ति करनेवाला साधक सुख-दु:ख के प्रसंग से चलायमान नहीं होता ।

व्यभिचारिणी भक्ति करनेवाला साधक थोड़ी-सी अनुकूलता या प्रतिकूलता आने पर साधन छोड़कर संसार में गिर जाता है या तो साधन के प्रकार बदलता रहता है । किन्तु अव्यभिचारिणी भक्ति करनेवाला साधक बाह्य परिस्थिति से, सुख-दु:ख के प्रसंग से चलायमान नहीं होता । व्यभिचारिणी भक्ति से थोड़ी पुण्याई बढ़ती है, थोड़ा सुख मिलता है परंतु मनुष्य को परम सुख की प्राप्ति तो अव्यभिचारिणी भक्ति से ही होती है । भगवान कहते हैं :

मयि चानन्ययोगेन...

भगवान के साथ अनन्य योग करें, अन्य-अन्य योग नहीं । कई लोग ईश्वर की भक्ति तो करते हैं लेकिन चिंता करते रहते हैं कि 'मेरा क्या होगा ? मेरे परिवार का क्या होगा ?' इसका नाम अनन्य भक्ति नहीं है, भगवान को संपूर्णरूप से समर्पित हो जाना अनन्य भक्ति है । भगवान में अनन्य भाव है तो फिर यह सोचना शेष नहीं रहता कि 'मेरा क्या होगा ?' जब सब कुछ उसीको सौंप दिया फिर चिंता कैसी ? अत: अनन्य भाव से अव्यभिचारिणी भक्ति करते हुए विविक्त देश का सेवन करें अर्थात् विषयी-विकारी पुरुषों के संग से किनारा कर लें और जहाँ साधन-भजन हो ऐसी जगह पर रहें । भगवद्ध्यान में, भगवद्ज्ञान में रमण करनेवाले महापुरुषों के सान्निध्य में रहें । शंकराचार्यजी ने कहा :

एकांतवासो लघुभोजनादौ...

एकांतवास, लघुभोजन अर्थात् इन्द्रियों का अल्प भोजन यानी देखना, सुनना, सूँघना, चखना, स्पर्श करना आदि के नियंत्रण से मन की चंचलता का नाश

होकर बुद्धि में आत्मप्रकाश होता है । फिर मन की वृत्तियाँ सूक्ष्म होती हैं, वृत्तियाँ सूक्ष्म होने से हम परमतत्त्व के करीब पहुँचते हैं ।

साधन ऐसा होना चाहिए कि शीघ्र ही भगवान का साक्षात्कार हो जाए । विषयी-विकारी लोगों के प्रभाव में आए बिना भक्ति में तदाकार होने से मनुष्य निष्पाप होता जाता है । निष्पाप होने से विवेक जागता है, संसार से वैराग्य आता है । निर्दोष होने से उसे संसार की असारता, परमात्मा की महत्ता का पता चलता है ।

भगवान में अनन्य भाव है तो फिर यह सोचना शेष नहीं रहता कि 'मेरा क्या होगा ?' जब सब कुछ उसीको सौंप दिया फिर चिंता कैसी ?

संसार पहले नहीं था, बाद में नहीं रहेगा और अभी भी नहीं की तरफ, विनाश की तरफ जा रहा है । ऐसे परिवर्तनशील संसार में, नश्वर-भोग पदार्थों में आसक्ति का अभाव तथा भोगसामग्री का औषधिवत् उपयोग ही बुद्धिमानी है ।

साधन ऐसा होना चाहिए कि शीघ्र ही भगवान का साक्षात्कार हो जाए ।

नाशवान् संसार से विरक्त होकर एक बार युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह के आगे अपनी मनोदशा का वर्णन किया :

''पितामह ! काल के चक्र में हमें कभी सुख मिला तो कभी दुःख मिला । हम कभी वन में भटके तो कभी सिंहासन पर बैठे । काल अपनी गति से चल रहा है और आयुष्य क्षीण होता जा रहा है, व्यर्थ नष्ट होता जा रहा है । कभी शत्रुओं के तो कभी मित्रों के, कभी भोग-पदार्थ के चिंतन में तो कभी आलस्य-प्रमाद में जीवन पानी की तरह बह रहा है । हे पितामह ! दिन-प्रतिदिन मौत नजदीक आती जा रही है । मौत हमें मार दे उसके पहले अमर आत्मा में विश्रांति कैसे पायें ?''

''पिताजी ! भोग-वासना के दलदल में फँसा मनुष्य फिर उससे बाहर नहीं निकल पाता है । भोग-सामग्री का अनुभव करके फिर मुक्ति के लिए पुरुषार्थ करना उचित नहीं लगता । अच्छा तो यह होगा कि आरंभ से ही संसार में फँसे बिना ईश्वर के मार्ग पर चल दें ।''

वक्ताओं में श्रेष्ठ, व्रतधारियों में दृढ़ ऐसे भीष्म पितामह युधिष्ठिर को उपदेश देते हैं : ''हे युधिष्ठिर ! तुमने अपने विवेक को जागृत करके उत्तम प्रश्न पूछा है । तुम्हारे प्रश्न से बंगदेश के ब्राह्मण की कथा स्मरण में आती है ।

बंगदेश में एक ब्राह्मण जप-तप, होम-हवन, व्रत-उपवास आदि कर्मकांड करते हुए ईश्वर के मार्ग पर चल रहा था । तपोनिधि ब्राह्मण की पुण्याई से उसके घर एक मेधावी बालक का जन्म हुआ । 'मेधा' अर्थात् प्रज्ञा । बालक जन्म से ही अत्यधिक प्रज्ञावान, बुद्धिमान होने के कारण उसका नाम भी 'मेधावी' रखा गया ।

मेधावी ५ साल का हुआ तब अपने तपोनिधि पिता से उसने प्रश्न किया : ''पिताजी ! मनुष्य का कर्त्तव्य क्या है ?''

पिता ने उत्तर देते हुए कहा : ''मनुष्य का कर्त्तव्य है कि २५ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य का पालन करके गुरुद्वार पर रहे, विद्याभ्यास करे, तत्पश्चात् दूसरे २५ साल अर्थात् ५० वर्ष की आयु तक गृहस्थाश्रम में रहकर संसार-निर्वाह करे । तदनन्तर २५ साल तक अर्थात् गृहस्थाश्रम से निवृत्त होकर वानप्रस्थ जीवन गुजारे और आखिर मोक्षप्राप्ति हेतु संन्यास ले ले ।''

आत्मज्ञान में तपोधन ब्राह्मण की इतनी गति नहीं थी इसलिए मनुष्य जीवन के सर्वसाधारण शास्त्रोक्त नियम बता दिये लेकिन ५ साल के मेधावी को पिताजी की ये बातें जची नहीं । उसने पूछा :

''मनुष्य २५ साल ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके गुरुद्वार पर रहकर विद्याभ्यास करे, फिर २५ से ५० वर्ष की उम्र तक संसारी विषयों में, विकारों में रहे,

उसके बाद मुनि-तपस्वी का जीवन बिताने से क्या लाभ होगा ? पिताजी ! भोग-वासना के दलदल में फँसा मनुष्य फिर उससे बाहर नहीं निकल पाता है। समझने पर भी वह फिसलता ही जाता है । शपथ भी खाता है फिर भी फिसल जाता है । इसलिए भोग-सामग्री का अनुभव करके फिर मुक्ति के लिए पुरुषार्थ करना उचित नहीं लगता । भोग तो सूअर और कुत्ते की योनि में भी मिलते हैं । मनुष्य शरीर मिला है तो उसकी उपयोगिता क्या ? पशु योनि की तरह इसे भी व्यर्थ गँवा देना चाहिए क्या ? इससे अच्छा तो यह होगा कि आरंभ से ही संसार में फँसे बिना ईश्वर के मार्ग पर चल दें ।''

ब्राह्मण : ''संसार में प्रवेश करने से, पुत्रप्राप्ति होने से पितृओं का ऋण चुकाया जाता है। पुत्र पितृओं का कल्याण करता है ।''

ब्राह्मण पुत्र मेधावी की बुद्धि सूक्ष्म थी। छोटे बच्चे को चोकलेट देकर पटाया जाता है इस तरह पिताजी ने अपनी बातों से उसे समझाना चाहा, परन्तु इन बातों से समझ जाए ऐसा वह नहीं था। उसने तर्क करते हुए कहा : ''पुत्र से ही यदि कल्याण हो जाता हो तो कई ऐसे पुत्र होते हैं जो पिता के नाम को तो क्या पूरे कुल-खानदान को भी बदनाम और बरबाद करनेवाले कर्म करते हैं । ऐसे पुत्रों से पितृओं का क्या कल्याण हो सकता है ? संसार में कितने ही लोगों को पुत्रप्राप्ति हुई है फिर भी उनका अकल्याण होना क्यों दिखाई दे रहा है ?''

मनुष्य पुत्र के सहारे, पत्नी के सहारे, धन या सत्ता के सहारे अपना कल्याण चाहता है तो यह उसकी बुद्धि का दोष है ।

प्रज्ञापराधो मूलं सर्वरोगाणाम् ।
प्रज्ञापराधो मूलं सर्वदुःखानाम् ॥

सारे रोगों का मूल, सारे दुःखों का मूल है प्रज्ञा का अपराध । मंद बुद्धि के कारण ही मनुष्य सौन्दर्य, सत्ता, धन आदि का सहारा लेकर सुख पाने की इच्छा रखता है । वह यहाँ तो सुख पाने की अंधी दौड़ में मर जाता है, जीवनभर झूठ-कपट, बेईमानी, धोखेबाजी करता रहता है तो मरने के बाद भी नरकों में जाकर पचता है ।

सारे रोगों का मूल, सारे दुःखों का मूल है प्रज्ञा का अपराध । मंद बुद्धि के कारण ही मनुष्य सौन्दर्य, सत्ता, धन आदि का सहारा लेकर सुख पाने की इच्छा रखता है ।

भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं :

''हे युधिष्ठिर ! बालक मेधावी अपने ब्राह्मण पिता से कहता है : ''पिताजी ! मुझे यह बात समझ में नहीं आती है कि भोग भोगकर, संसार के अनुभव से गुजरकर फिर मोक्षमार्ग पर चलें उसके बदले पहले से ही विवेक जागृत करके, दूसरों के अनुभव से सावधान होकर हम आरंभ से ही संसार में न फँसें और मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर हो जाएँ तो कितना अच्छा ! पिताजी ! आप ही मुझे बताइये कि ऐसा कौन-सा मार्ग है जिससे शीघ्र मोक्षप्राप्ति हो । पिताजी ! मुझे लग रहा है कि कोई दिन-रात मेरे पीछे पड़ा है और मुझे मार रहा है ।''

''सांसारिक भोग से या स्वर्गादि के सुखों के भोग से शक्तिहीनता, जड़ता, पराधीनता ही मिलती है । इसलिए मैं सोचता हूँ कि भोग की अपेक्षा योग का मार्ग लेना ही कल्याणकारी साबित होगा ।''

पिता : ''तू ऐसी बातें क्यों करता है ? तू खुद डरा हुआ है और मुझे भी डरा रहा है ।''

मेधावी : ''पिताजी ! मैं डरा हुआ नहीं हूँ । मैं सच कहता हूँ । आप होम-हवन, जप-तप आदि करके स्वर्ग का सुख पाना चाहते हैं लेकिन मैंने तो सुना है कि वह सुख सच्चा सुख नहीं है, सदा टिकनेवाला नहीं है । काल डंडा लेकर सबके पीछे पड़ा है, सबको मार रहा है । ऐसी दशा में २५ साल संसार-निर्वाह में गँवा देने की बात अनुचित समझता हूँ । कौन कब

मृत्यु की झपेट में आ जाए, कोई पता नहीं है । जीवन का कोई भरोसा नहीं है अत: भोगों का अनुभव लेने के बजाय अपने कल्याण की बात सोचनी चाहिए । ऐसा कौन-सा भोग है कि जिसे भोगने के बाद रोग न मिला हो ? सांसारिक भोग से या स्वर्गादि के सुखों के भोग से शक्तिहीनता, जड़ता, पराधीनता ही मिलती है । इसलिए मैं सोचता हूँ कि भोग की अपेक्षा योग का मार्ग लेना ही कल्याणकारी साबित होगा ।''

तपोधन ब्राह्मण सोचता है कि आज तक जिंदगी के कई साल व्यर्थ भोग-पदार्थों की प्राप्ति की दौड़ में गँवा दिये लेकिन इस बच्चे ने तो मेरी आँखें खोल दीं । वे बोले :

''मेधावी ! तू सच कहता है । मैंने कर्मकांड करके अपनी वासनाओं को तृप्त करना चाहा मगर उससे शांति नहीं मिली, अंतर में तृप्ति नहीं मिली । वरन् कामनाएँ गहरी उतरती गईं । मृत्यु कब आकर गला दबोच ले, कोई पता नहीं है । जैसे चूहे को कहीं से मिठाई मिले और वह आराम से खाने लगा हो और अचानक बिल्ली आकर उसे झपेट ले... ऐसी हालत संसार के भोगों में रत मनुष्य की होती है । मुझे भी कब मृत्यु आकर झपेट लेगी, कोई पता नहीं है ।

जिस शरीर को खिलाया-पिलाया, घुमाया-फिराया, आखिर में वह अग्नि में जलकर खाक हो जाएगा । वह खाक हो जाए उससे पहले अपने शिवस्वरूप को, आत्मा को जानने का उपाय खोजना चाहिए ।''

भीष्म पितामह अपनी बात को आगे चलाते हुए कहते हैं :

''हे बुद्धिमान युधिष्ठिर ! मनुष्य के जीवन के चार पुरुषार्थ हैं : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । इन चारों पुरुषार्थ में से बुद्धिमान मनुष्य को चौथा पुरुषार्थ मोक्ष पाने में ही सार लगता है । जिनके चित्त में मोक्षप्राप्ति की इच्छा है वे धर्म के अनुकूल रहकर अर्थ और काम भोगते हैं । वे सजाग रहकर संसार के व्यवहार को चलाते हैं । इससे विवेक-वैराग्य की प्राप्ति होती है और वे परम पुरुषार्थ मोक्ष के मार्ग पर चल पड़ते हैं ।

जिनके चित्त में मोक्षप्राप्ति की इच्छा है वे धर्म के अनुकूल रहकर अर्थ और काम भोगते हैं । वे सजाग रहकर संसार के व्यवहार को चलाते हैं । इससे विवेक-वैराग्य की प्राप्ति होती है और वे परम पुरुषार्थ मोक्ष के मार्ग पर चल पड़ते हैं ।

जिन्हें अपने कल्याण के लिए पुरुषार्थ करना हो उन्हें अपने स्थूल शरीर को परहित के कार्य में और सूक्ष्म शरीर यानी मन को भगवन्नाम के जप, ध्यान, आत्मचिंतन में लगाना चाहिए । निष्काम कर्म से अंत:करण की शुद्धि होती है और भोग-वासनाएँ क्षीण होती हैं । योग से सामर्थ्य आता है । परमात्मा की अव्यभिचारिणी भक्ति करने से अंत:करण दिव्य होता है और दिव्य रस की प्राप्ति होती है । जीवन के चार पुरुषार्थ में से अर्थ और काम तो शरीर के लिए हैं । धर्म के आचरण से मन ईश्वर की ओर चलता है जबकि मोक्ष परम पद को दिलानेवाला है । हे कुरुनंदन युधिष्ठिर ! यदि किसी बुद्धिमान के मन में प्रतिशोध की आग भड़कती रहती है तो वह धर्म का सहारा लेकर अपने मन को समझाता है, शांत रखता है । जो धर्म के अनुकूल व्यवहार करता है, वह अंत में भगवान की शरण जाता है लेकिन जो अधर्म का सहारा लेता है वह दुर्बुद्धि दुर्योधन की नाईं अपने को और अपने साथवालों को दुर्गति की खाई में डालता है ।

जो धर्म के अनुकूल व्यवहार करता है वह अंत में भगवान की शरण जाता है । जो अधर्म का सहारा लेता है वह दुर्बुद्धि दुर्योधन की नाईं अपने को और अपने साथवालों को दुर्गति की खाई में डालता है ।

ऐसे लोगों को चाहिए कि निष्काम भाव से कर्म करें जिससे अंत:करण शुद्ध हो । शुद्ध अंत:करणवाले मनुष्य को ही परमात्म-ध्यान, परमात्म-प्रेम के दिव्य प्रसाद की प्राप्ति होती है । ऐसा मानव उस ब्राह्मणपुत्र मेधावी की तरह अपना विवेक जगाकर परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है ।''

सच्चा मित्र

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

गुजराती भक्त-कवि नरसिंह मेहता ने गाया है :

समरने श्रीहरि, मेल ममता परी
जोने विचारी ले मूळ तारुँ ।
तुं अल्या कोण ने कोने वळगी रह्यो
वगर समज्ये कहे मारुं मारुं ।

यहाँ कवि नरसिंह मेहता कहते हैं : 'ममता को छोड़कर जीव को श्रीहरि का स्मरण करना चाहिए । अपने मूल स्वरूप का विचार कर लेना चाहिए । तुम कौन हो और 'मेरा-मेरा' करके किसको पकड़कर बैठे हो ? जरा समझो ।'

शास्त्रों ने पुत्र-परिवार का लालन-पालन करने की मना नहीं की है । धन और पद को पाने की मना नहीं की है लेकिन स्थूल शरीर से संबंधित जिन पुत्र-परिवार या धन के पीछे जीवन पूरा कर देते हो, उनमें से कुछ भी अंत समय में साथ में नहीं आता है । जिस नश्वर शरीर के लिये धन इकट्ठा करने में कितने ही पाप-ताप सहे, कितने ही दाँव-पेच किये, उस शरीर को यहीं पर छोड़कर जाना पड़ता है । जिन पुत्र-परिवार के लालन-पालन में पूरा आयुष्य बिता दिया, उन पुत्र-परिवार को छोड़कर जाना पड़ता है ।

कर सत्संग अभी से प्यारे
नहीं तो फिर पछताना है ।
खिला-पिलाकर देह बढ़ायी
वह भी अग्नि में जलाना है ।
पड़ा रहेगा माल खजाना
छोड़ त्रिया सुत जाना है ।
कर सत्संग अभी से प्यारे
नहीं तो फिर पछताना है ।

अगर तुम पीछे पछताना नहीं चाहते हो तो पुत्र-परिवार, धन-पद आदि में आसक्ति मत करो । व्यवहार के लिये जितना आवश्यक हो उतना धन मिल जाये फिर और धन कमाने की, उसे संभालने की या उसे बढ़ाने की झंझट में पड़कर जीवन बरबाद मत करो । इन सबमें आसक्तिरहित होकर व्यवहार चलाओ और प्रीति केवल आत्मा-परमात्मा में रखो, उसे बढ़ाते जाओ क्योंकि आत्मा-परमात्मा का संबंध ही शाश्वत है । बाकी के सब संबंध नश्वर हैं ।

किसी आदमी के तीन मित्र थे । मित्र तो उसके साथ इतना गाढ़ संबंध नहीं रखते थे, परंतु उन लोगों में इस आदमी की थोड़ी-बहुत आसक्ति थी । पहले मित्र में तो इतनी ज्यादा आसक्ति थी कि जब उसके संग में रहता तब वह खाना-पीना और सोना भी भूल जाता था ।

दूसरे मित्र के साथ उस आदमी की दोस्ती पहले मित्र जैसी प्रगाढ़ नहीं थी । उसके साथ भी रहता था, घूमता-फिरता था और साथ में अपना काम भी निकाल लेता था । तीसरा मित्र उसे हमेशा अच्छी सीख देता कि 'दुर्लभ मनुष्य जन्म मिला है, इसका दुरुपयोग मत कर । इस शरीर को कितना भी खिलायेगा-पिलायेगा आखिर तो उसे स्मशान की अग्नि में जला देना है । तू अंतर्यामी परमात्मा का स्मरण कर । वही सदा के लिये तेरा साथी रहेगा ।' इस तीसरे मित्र की बातें उसे इतनी जँचती नहीं थी, इसलिए हप्ते-दो हप्ते में, महीने-दो महीने में उस मित्र से मिलता-न मिलता, उसकी बात सुनी-अनसुनी करके उससे विदा ले लेता था ।

दैवयोग से उस आदमी के ऊपर किसीने कुछ आरोप लगा दिया । सरकारी अमलदारों ने उसको जेल में डाल देने का आदेश दे दिया । यह सुनकर उसने सोचा कि 'मैं अपने मित्रों के पास जाऊँ । शायद वे मेरी कुछ मदद कर सकें तो मैं जेल में जाने से बच जाऊँ ।'

वह अपने पहले मित्र के पास गया और सारी बातें बताईं । उस मित्र ने कहा : ''तेरे साथ मेरी दोस्ती कहाँ है ? तू ही मेरे पीछे-पीछे घूमता था । मेरे पास

ऐसा फालतू समय नहीं है कि तेरे पीछे गँवाऊँ ।''

वह अपने दूसरे मित्र के पास गया और अर्ज करने लगा कि कुछ भी करो, मुझे जेल में जाने से बचा लो । तब दूसरे मित्र ने कहा : ''जब पुलिस अमलदार ने तुम्हें पकड़ने का आदेश दे ही दिया है तो अब मैं क्या कर सकता हूँ ? ज्यादा-से-ज्यादा मैं पुलिस चौकी तक तुम्हारा साथ दे सकता हूँ ।'' वह निराश होकर बैठ गया ।

तीसरे मित्र को पता चला कि वह आदमी जो उसकी बात टाल देता है, उसे मिलने के लिये भी उत्सुक नहीं है वह बड़ी मुसीबत में है । वह तीसरा मित्र उसके पास दौड़ता चला आया और पूछने लगा : ''मित्र ! क्या बात है ? सुना है तुम किसी मुसीबत में फँस गये हो ?''

तीसरे मित्र की ऐसी हृदयपूर्वक सहानुभूति देखकर उसने सारी बात बताई : ''मेरा इतना दोष नहीं है लेकिन अमलदारों ने जेल में डालने का आदेश दे दिया है । तुम अगर मुझे बचा लो तो तुम्हारी बड़ी मेहरबानी होगी ।''

तब उस मित्र ने जवाब दिया : ''मेरे मित्र ! तू चिन्ता मत कर । मैं तेरे साथ हूँ । तूने कुछ गलती नहीं की होती और सावधान रहा होता तो जेल जाने से बच जाता । अब जेल जाना भी पड़े तो भी मैं तेरे साथ रहूँगा । तेरा साथ नहीं छोड़ूँगा ।''

यह तो एक कल्पित कहानी है लेकिन अपने जीवन से जुड़ी हुई है ।

जिस तरह उस आदमी ने अपने पहले मित्र के लिये खाना-पीना-सोना छोड़ दिया, पुत्र-परिवार का भी खयाल नहीं रखा, लेकिन संकट के समय में उस मित्र ने जरा भी साथ नहीं दिया, उसी तरह मनुष्य का पहला मित्र धन है । जिस धन को प्राप्त करने के लिये मनुष्य खाना-पीना हराम करके भी लगा रहता है वह धन उसके मृत्यु के समय में काम नहीं आता है । जीव के लिये संकट का समय है मृत्यु । जीव को मृत्यु के समय यमदूत लेने आते हैं तब धन उसकी रक्षा नहीं करता है । वह तो कहता है कि 'मैंने तेरे साथ दोस्ती नहीं की, तू ही मेरे पीछे-पीछे घूमता था ।'

मनुष्य का दूसरा मित्र है पुत्र-परिवार । मनुष्य पुत्र-परिवार को सुखी करने के लिये कितने-कितने पापकर्म करता है लेकिन जब यमदूत मृत्युरूपी फाँसी लेकर आते हैं तब कुटुम्बी कहते हैं : 'हम ज्यादा-से-ज्यादा स्मशान तक तुम्हारा साथ दे सकते हैं लेकिन तुम्हारे साथ नहीं आ सकते ।'

मनुष्य का तीसरा मित्र है धर्म । वह कहता है : 'मित्र ! तू चिन्ता मत कर । तू कहीं भी जाएगा, मैं तेरे साथ आऊँगा । मैं सदा तेरे साथ रहूँगा ।'

इस कहानी से समझ लेना चाहिए कि जिसको तुम 'मेरा' मानकर लिपटे रहते हो वह धन, पुत्र-परिवार तुम्हारा कहाँ तक साथ देता है ? धर्म ही मनुष्यमात्र का सच्चा मित्र है । जिस धन को कमाने के लिये तुम दिन-रात गँवा देते हो उस धन में सद्‌गुण तो सोलह हैं किन्तु दुर्गुण चौसठ हैं । धन ज्यादा होगा और उसका सदुपयोग नहीं किया तो जीवन में कोई न कोई दुर्गुण आ ही जाएगा जो जीवन को बरबाद कर देगा । जबकि धर्म लोक और परलोक दोनों में जीव का रक्षण करता है । अत: धर्म का ही आचरण करना चाहिए ।

वह धर्म क्या है ? जो समग्र विश्व को धारण कर रहा है उस आत्मा-परमात्मा का ध्यान करना, उस अंतर्यामी परमात्मा का ज्ञान पाना एवं 'आत्मा शाश्वत है और शरीर नश्वर है' ऐसी समझ को दृढ़ करके अपने आत्मस्वरूप को जानना ही धर्म है । 'जो स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर को सत्ता दे रहा है वह चैतन्य आत्मा मैं हूँ' - ऐसा अनुभव पा लेना धर्म है ।

हम लोग स्थूल शरीर को 'मैं' मान रहे हैं इसलिए हमारे सच्चे मित्र धर्म का साथ नहीं ले सकते हैं । अगर हम धर्म के मार्ग पर चलना चाहते हैं तो अपनी समझ को बदलना होगा, हमारे व्यवहार को, हमारे चिंतन को बदलना होगा । जैसे स्थूल शरीर के लिये अन्न-फल आदि आहार की आवश्यकता है वैसे सूक्ष्म शरीर के लिये भी भगवन्नाम जप, ध्यान और आध्यात्मिक चिंतनरूपी आहार की जरूरत है । इन स्थूल-सूक्ष्म दोनों शरीरों को उचित मात्रा में यथायोग्य आहार मिलता रहेगा तो स्वस्थता और शांति सहज में मिल जाएगी । आत्मा-परमात्मा का रस प्रगट हो जाएगा ।

❀

धन छोड़ा पर धर्म न छोड़ा...

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

बंगाल के माल्दा जिले के केन्दूरपुर नामक गाँव में एक नुमाई नाम का बालक था जो बाद में एक अच्छे स्वयंसेवक के रूप में प्रसिद्ध हुआ था ।

उसे बचपन में एक बार जोरदार बुखार आ गया था और पैर में चोट लग गयी थी । अनेकों छोटे-मोटे इलाज करने पर बुखार तो मिट गया किन्तु घाव मिटने का नाम नहीं ले रहा था ।

आखिरकार थककर किसीकी सलाह से उसे बड़े अस्पताल में भर्ती कर दिया गया । वह अस्पताल ईसाई मिशनरी का था अत: वहाँ उसके घाव भरने के साथ-साथ नुमाई में ईसाइयत भरने का भी प्रयास किया जाने लगा और छोटे-से घाव को भरने के लिए उसे पाँच-छ: महीने तक अस्पताल में रखा ताकि धीरे-धीरे उसका हृदय ईसाइयत के संस्कारों से भर जाये ।

लेकिन वह बालक नुमाई अपने धर्म पर अड़िग रहा और बोला : ''मैं हिन्दू हूँ और हिन्दू ही रहूँगा । तुम्हारे चक्कर में आकर मैं ईसाई बननेवाला नहीं हूँ ।''

अंतिम प्रयास करते हुए ईसाई मिशनरीवालों ने उसके गरीब पिता से कहा :

''इसके घाव भरने में छ: हजार रूपये खर्च हो गये हैं । तुम अपने लड़के से कह दो कि वह ईसाइयत स्वीकार कर ले । अगर वह ईसाइयत स्वीकार कर लेगा तो छ: हजार रूपये माफ हो जायेंगे, नहीं तो तुम्हें वे रूपये भरने पड़ेंगे जबकि तुम तो गरीब हो । तुम्हारे पास केवल बारह बीघा जमीन है । (उस समय एक बीघा जमीन की कीमत एक हजार रूपये थी ।) या तो तुम छ: बीघा जमीन दे दो जो कि तुम्हारे भरण-पोषण का एक-मात्र आधार है या फिर नुमाई को ईसाइयत स्वीकार करने के लिए राजी कर लो ।''

तब पिता बोला : ''मैं धन का गरीब हूँ लेकिन धर्म का नहीं । धर्म बेचने के लिए नहीं होता । मैं छ: बीघा जमीन बेचकर भी छ: हजार रूपये तुम्हें दे दूँगा ।''

उस गरीब पिता ने छ: बीघा जमीन बेचकर भी रूपये दे दिये किन्तु धर्म नहीं बेचा । उस बालक ने हिन्दू रहकर ही अपना पूरा जीवन ईश्वर के रास्ते लगा दिया । कितनी निष्ठा है स्वधर्म में !

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह: ।

अपने धर्म में युद्ध करते-करते मर जाना भी अच्छा है लेकिन दूसरों का धर्म भयावह है । कभी-भी अपने धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए वरन् अपने धर्म में अडिग रहकर ही, अपने धर्म का पालन करते हुए अपने धर्म और अपनी संस्कृति के गौरव की रक्षा करनी चाहिए । इसीमें हमारा कल्याण है ।

(पृष्ठ १० का शेष)

बीमारियों से ग्रस्त होने से रोकना चाहते हैं, स्वस्थ समाज का निर्माण करना चाहते हैं उन सबका यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वे हमारी गुमराह युवा पीढ़ी को **'यौवन सुरक्षा'** जैसी पुस्तिकाएँ पढ़ायें । विद्यार्थियों में ऐसी पुस्तिका बाँटने से इस देश के जवानों को गुमराह होने से बचा सकते हैं और देश की महत्त्वपूर्ण सेवा कर सकते हैं । अत: **'यौवन सुरक्षा'** आप भी पढ़ें एवं औरों को भी पढ़ायें । आप यदि साधना करते हैं, ध्यान-भजन करते हैं तब तो **'यौवन सुरक्षा'** के द्वारा आप दिव्यता प्राप्त कर सकते हैं । यदि आप साधना न भी करें तो भी **'यौवन सुरक्षा'** के द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक प्रसन्नता और बौद्धिक योग्यता का विकास कर सकते हैं... अपने जीवन को पशुता से बचा सकते हैं और मानव समाज को पिशाची समाज बनने से रोक सकते हैं ।

ग्रीष्म ऋतु में आहार-विहार

वैसे तो स्वस्थ व नीरोगी रहने के लिये प्रत्येक ऋतु में ऋतु के अनुकूल आहार-विहार जरूरी होता है लेकिन ग्रीष्म ऋतु में आदानकाल का समय होने से आहार-विहार पर विशेष ध्यान देना पड़ता है क्योंकि इसमें प्राकृतिक रूप से शरीर के पोषण की अपेक्षा शोषण होता है । अत: उचित आहार-विहार में की गई लापरवाही हमारे लिये कष्टदायक हो सकती है ।

वसंत ऋतु की समाप्ति के बाद ग्रीष्म ऋतु का प्रारंभ होता है । सूर्य उत्तर दिशा की तरफ होने से, उसकी प्रचंड गर्मी के कारण पृथ्वी एवं प्राणियों का जलीयांश कम हो जाने से जीवों में रूखापन बढ़ता है । परिणामस्वरूप पित्त के विदग्ध होने से जठराग्नि मंद हो जाती है, भूख कम लगती है, आहार का पाचन नहीं होता, अत: इस ऋतु में दस्त, उल्टी, कमजोरी, बेचैनी आदि परेशानियाँ पैदा हो जाती हैं । ऐसे समय में कम आहार लेना व शीतल जल पीना अधिक हितकर है ।

आहार : ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की तीव्र किरणों द्वारा संसार के जड़-चेतन का स्नेहांश सोख लेने के कारण रूक्ष रस की वृद्धि हो जाती है । अत: इस ऋतु में शीतवीर्य, मधुर रसयुक्त पदार्थ एवं स्निग्ध तथा बलवर्धक खाद्य व पेय पदार्थों का सेवन उपयोगी होता है । वाग्भट के अनुसार ग्रीष्मकाल में मीठे, हल्के, चिकनाईयुक्त, शीतल व तरल पदार्थों का सेवन विशेष रूप से करना चाहिये । इस ऋतु में फलों में खरबूज, तरबूज, मौसम्बी, सन्तरा, केला, मीठे आम, मीठे अंगूर आदि, सब्जियों में परवल, करेला, पके लाल टमाटर, पोदीना, हरा धनिया, नींबू आदि का सेवन करें ।

विहार : इस ऋतु में प्रात: वायु सेवन, योगासन, व्यायाम, तैल मालिस हितकारी है ।

अपथ्य : तेज मिर्च-मसालेवाले, तले, नमकीन, रूखे, बासे, कसैले, कड़वे, चटपटे, दुर्गन्ध युक्त पदार्थों का सेवन न करें । देर रात तक जागना, सुबह देर तक सोना, दिन में सोना, अधिक देर तक धूप में घूमना, कठोर परिश्रम, अधिक व्यायाम, अधिक स्त्री-पुरुष का सहवास, भूख-प्यास सहन करना, मलमूत्र के वेग को रोकना हानिप्रद है ।

विशेष : ग्रीष्म ऋतु में पित्त दोष की प्रधानता से पित्त के रोग अधिक होते हैं जैसे दाह, उष्णता, आलस्य, मूर्च्छा, अपच, दस्त, नेत्रविकार आदि । अत: गर्मियों में घर से बाहर निकलते समय लू से बचने के लिये सिर पर कपड़ा रखें व एक गिलास पानी पीकर निकलें । जेब में कपूर रखें । गर्मियों में फ्रीज का ठंडा पानी पीने से गले, दाँत, आमाशय व आँतों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । अत: फ्रीज का पानी न पीकर मटके का या सुराही का पानी पियें ।

टमाटर

गुण-धर्म : टमाटर खट्टा-मीठा, रुचिवर्धक, अग्निदीपक व शक्तिवर्धक है । इसके सेवन से शरीर की स्थूलता, उदररोग, अतिसार आदि रोगों का नाश होता है । इसमें लौहतत्त्व दूध की अपेक्षा दोगुना व अण्डे की अपेक्षा पाँच गुना अधिक है । सब्जियों व फलों की अपेक्षा इसमें लौहतत्त्व डेढ़ गुना अधिक होता है ।

५० से २०० ग्राम टमाटर के नियमित सेवन से शरीर में बलवृद्धि होती है । रक्त शुद्ध होता है । सप्तधातुओं के लिये टमाटर अत्यंत उपादेय है, साथ ही यह पाचनतंत्र को सुचारु बनाये रखता है ।

भोजन के पूर्व टमाटर का सेवन करने से भूख खुलकर लगती है व भोजन शीघ्र पचता है ।

रक्ताल्पता के रोगियों को इसका सेवन अवश्य करना चाहिये। यकृत, पित्त, बदहजमी से पीड़ित रोगियों के लिये भी यह लाभकारी है। मधुमेह के रोगियों के लिये टमाटर का सेवन हितकारी है। नेत्रविकार, रतौंधी, मसूढ़े कमजोर हो गये हों, मुँह में बार-बार छाले पड़ना आदि चर्म रोगों में इसका सेवन अवश्य करना चाहिये।

टमाटर में ताँबा अधिक होता है। फलस्वरूप यह रक्त में लाल कणों की वृद्धि करता है। वैज्ञानिक मतानुसार टमाटर खाद्य पदार्थों में अत्यंत महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। शरीर-संवर्धन के लिये सभी उपयोगी तत्त्व टमाटर में प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। गर्भवती स्त्रियों के लिए व प्रसूति के बाद शारीरिक व मानसिक शक्ति बढ़ाने के लिये इसका रस लाभदायक है।

मधुमेह : मधुमेह के रोगियों के लिये टमाटर अत्यंत हितकारी है। इस रोग में प्रातः व सायं १५०-२०० ग्राम टमाटर के रस का सेवन करें। परिणामतः मूत्र में शर्करा की मात्रा धीरे-धीरे कम होकर मधुमेह दूर हो जायगा।

रक्तदोष : रक्तविकार के कारण त्वचा पर लाल-लाल चकते निकलना, मसूड़ों में सूजन व खून का आना, इसमें २०-२० ग्राम टमाटर का रस दिन में तीन से चार बार पियें।

उल्टी : १०० ग्राम टमाटर का रस व २५ ग्राम शक्कर, लौंग, काली मिर्च व इलायची का थोड़ा-सा चूर्ण- इन सबको मिलाकर पीने से उल्टियाँ बंद हो जाती हैं।

वायुविकार : टमाटर उत्तम वायुनाशक है। इसके रस में पुदीना व अदरक का रस मिलाकर, चुटकी भर सैंधव नमक डालकर पीने से वायुविकार नष्ट होते हैं।

विशेष : पथरी के रोगी को टमाटर नहीं खाना चाहिए।

आध्यात्मिक मशाल : 'ऋषि प्रसाद'

संपादकजी,

'ऋषि प्रसाद' के 'स्वर्ण जयंती अंक' के प्रकाशन पर आत्मीय मंगल कामनाएँ। अशांति से भरे इस घोर कलियुग में जहाँ सर्वत्र मर्यादाओं का ह्रास होता नजर आ रहा है, सत्साहित्य और शास्त्रों के अध्ययन-मनन से समाज एकदम दूर हटता जा रहा है, ऐसे में इस पत्रिका ने पूज्यश्री की अमृतवर्षी, सरल, सहज एवं अनुभवसंपन्न वाणी को देश-विदेश में पहुँचाकर समाज-निर्माण की दिशा में जो मिसाल कायम की है वह अभूतपूर्व है, अद्वितीय है। यह पत्रिका अपने आपमें वह आध्यात्मिक आंदोलन है, जिससे हर व्यक्ति जागृत होता है एवं अपना विवेक-विचार जागृत रखने को तत्पर रहता है। इस पत्रिका का पाठक दुःख में पहले जैसा घबराता नहीं, विह्वल नहीं होता एवं सुख से आकर्षित नहीं होता। यह सब पूज्यश्री की असीम अनुकंपा का ही अमृत है, जिसे आज समूचा राष्ट्र और विश्व पा रहा है।

- रीनू दवे

११७, राजस्व कॉलोनी, रतलाम (म. प्र.)

तुम्हें मनुष्य जन्म इसलिए नहीं मिला कि तुम अपनी बुद्धि का दुरुपयोग करके जन्म-मृत्यु के चक्र को और भी लंबा कर लो तथा अत्यंत पीड़ादायक नरकादि में पचने की और भी सुव्यवस्था कर लो। जरा तो सोचो... अभी भी समय है, अभी भी चेतकर सन्मार्ग पर आने से काम बन सकता है। *- श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार*

स्वप्न में मंत्रदीक्षा

मुझे आज से ५-७ वर्ष पूर्व पंचेड़ (रतलाम) आश्रम पर पूज्यश्री द्वारा मंत्रदीक्षा मिली थी परन्तु उस समय मुझे इस अति अनमोल धरोहर के महत्त्व का पता नहीं होने से मैं पता नहीं कैसे, अपना गुरुमंत्र भूल गयी । मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूं ? गुरुमंत्र गुप्त होता है इसलिये मुझे बतानेवाला भी कोई नहीं था । मुझमें इतनी हिम्मत भी नहीं कि मैं अपनी इस भारी भूल को पूज्यश्री के समक्ष दोहरा सकूँ । ऐसा लगा कि मैंने अपने जीवन का सर्वस्व खो दिया है । मेरे पास सिवाय पश्चात्ताप के कोई शेष मार्ग नहीं था । फिर भी मुझे पूज्यश्री की निशदिन हम बच्चों पर बरसती कृपा पर अटूट विश्वास था ।

मैंने मन-ही-मन प्रतिदिन पूज्यश्री से प्रार्थना करना आरंभ किया । मुझे पूरा यकीन था कि जब करुणासिंधु गुरुवर सभी की संसारी इच्छाएँ पूर्ण करने में कोई कमी नहीं रखते, किसीको निराश नहीं करते तो मैं जो उनसे माँग रही हूँ वह तो परम दुर्लभ प्रसाद है । बस... दिन-रात प्रार्थना, पश्चात्ताप में खोयी रहती । आखिरकार पूज्यश्री ने मेरी बिनती स्वीकार कर ली । मेरे निराश, दुःखी मन-मंदिर में गुरुकृपा से आनंद और प्रभुभक्ति के दीप जगमगाए । एक रात्रि को पूज्यश्री ने मुझे स्वप्न में दर्शन दिये और प्रेम से आँख दिखाते हुए उसी सहज मनोहारी शैली में मुझसे पूछा : ''तेरा गुरुमंत्र क्या है ?''

मैं कुछ कहने का साहस नहीं कर पायी । तब पूज्यश्री ने मुझे अपना वही गुरुमंत्र स्मरण कराते हुए कहा : ''यही है न तेरा मंत्र ?''

इतना सुनते ही मुझे अपना वही गुरुमंत्र पुनः स्मरण आ गया और मेरी खुशी का कोई ठौर नहीं रहा । पूज्यश्री मुस्कुराये और बोले : ''बेटा ! अब मत भूलना ।''

मेरे हृदय में उस समय इतनी अत्यधिक खुशी हुई कि बरबस मेरी नींद खुल गयी और मेरी आँखें भर आयीं । सचमुच, पूज्यश्री कितने कृपालु हैं ! हम भक्तों पर कैसे-कैसे, किस रूप में कब और कहाँ-कहाँ अपनी कृपा करते हैं इसको आँक पाना अत्यन्त दुष्कर है । मुझे ऐसा लगा जैसे मेरा फिर से एक नया जन्म हुआ । अब मैं प्रतिदिन उसी उत्साह, तत्परता और नियमपूर्वक अपनी साधना करती हूँ ।

पूज्यश्री के श्रीचरणों में मेरा कोटिश: नमन...

- श्रीमती मनुबहन सोनी
दौलतगंज, रतलाम (म. प्र.)

(पृष्ठ १३ का शेष)

हुई है ? तू जो न्याय करेगा हम स्वीकार कर लेंगे ।''

लखनभैया समझ गये कि वृक्ष और लता का रूपक लेकर यह पति और पत्नी का मीठा झगड़ा चल रहा है । पति को पत्नी की महानता नजर आती है और पत्नी को पति अपने जीवन का सार लगते हैं । लखन भैया बड़े चतुर थे । वे बोले :

''मुझे तो कुछ तीसरा ही नजर आता है ।''

दोनों बोल पड़े : ''क्या नजर आता है, लक्ष्मण !''

लक्ष्मण : ''वृक्ष चाहे भाग्यशाली हो या न हो और लता चाहे भाग्यशाली हो या न हो, किंतु दोनों की छाया में बैठकर जो मुसाफिर अपनी थकान मिटाता है वह लक्ष्मण जरूर महा भाग्यशाली है जिसे श्रीरामजी की और सीता माता की शरण मिली है ।''

परब्रह्म परमात्मा हैं श्रीरामचंद्र और माँ सीता उनकी आह्लादिनी शक्ति हैं । उनमें अपने मन-बुद्धि को अर्पण करके, लखनलाला ने पूर्ण शरणागति स्वीकार करके धन्यता का अनुभव किया ।

हम भी अपने इष्ट या परमेश्वर के श्रीचरणों में जाकर, उन्हें मन-बुद्धि अर्पण करके, शोकरहित होकर मुक्त हो जाएँ... ॐ... ॐ...ॐ...

संस्था समाचार

नागपुर : महाराष्ट्र की उपराजधानी नागपुर के हरिओम धाम, रेशमबाग में दिनांक : २६ फरवरी से २ मार्च तक आयोजित भक्ति-योग ज्ञान-गंगा सत्संग के पाँच दिवसीय प्रवचन के शुभारम्भ के समय पूज्यश्री की अमृतवाणी से संपूर्ण परिसर गूँज उठा और भक्त-समूह के हृदय के तार स्पंदित हो उठे । पूज्य बापूजी के व्यासपीठ पर बिराजमान होने के बाद उनके स्वागत में बाबा नानक हाईस्कूल की बालिकाओं ने स्वागतगान प्रस्तुत किया ।

इस अवसर पर स्वागताध्यक्ष एवं सांसद श्री बनवारीलाल पुरोहित ने नागपुरवासियों की ओर से पूज्य बापूजी के श्रीचरणों में श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए कहा : *"यह संतों की पवित्र भूमि नागपुर आज धन्य हुई है क्योंकि यहाँ ऐसे महान् संत के सत्संग का आयोजन हुआ है । नागपुर के सभी निवासियों की ओर से मैं पूज्यश्री को वंदन करता हूँ और उनसे आशीर्वाद चाहता हूँ कि ऐसा सौभाग्य हमें बार-बार मिलता रहे ।"*

दिनांक : १ मार्च को विद्यार्थियों के लिए आयोजित विशेष सत्र में ४०००० छात्र-छात्राओं को संबोधित करते हुए पूज्यश्री ने कहा :

"जिन विद्यार्थियों का मनोबल ऊँचा होता है, बाधाएँ-विपदाएँ उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकती हैं ।"

आज आर. एस. एस. के विदर्भ प्रांत सहसंचालक श्री विनायकराव, वि. हि. प. के विदर्भ महामंत्री श्री वसंतराव पाठक, मोदी ग्रुप ऑफ इन्डस्ट्रीज के चेयरमेन केदारनाथ मोदी एवं नगर के गणमान्य व्यक्तियों ने माल्यार्पण कर पूज्य बापूजी का स्वागत किया ।

सत्संग समारोह के अंतिम दिवस ब्रह्मविद्या के ज्योतिर्धर पूज्य बापूजी ने डेढ़ लाख श्रद्धालुओं को शराब, पान, तम्बाकू, सिगरेट आदि दुर्व्यसनों से होनेवाली हानियों से अवगत कराते हुए उन्हें व्यसन छोड़ने का आह्वान किया । इस पर हजारों लोगों ने अपने हाथ उठाकर इन दुर्व्यसनों को छोड़ने का संकल्प किया ।

आसपास के गाँवों, शहरों से आये हुए श्रद्धालु श्रोताओं के कारण सत्संग-स्थल एक 'लघु कुंभ' के रूप में परिणत हो चुका था ।

आज पालकमंत्री श्री नीतिन गुड़करी एवं नवनिर्वाचित पार्षद श्री गोपाल ग्वालानी ने पूज्यश्री को माल्यार्पण कर आशीर्वाद प्राप्त किया व पूरे समय बैठकर वचनामृतों का पान किया ।

शाम को सत्संग की पूर्णाहुति के बाद पूज्य बापूजी ने छिन्दवाड़ा के लिए प्रस्थान किया ।

छिन्दवाड़ा : दिनांक : ३ व ४ मार्च को छिन्दवाड़ा व आसपास के गाँवों की धर्मप्रेमी जनता ने आश्रम परिसर में आयोजित सत्संग समारोह में पूज्य बापू की सत्संग-सरिता में स्नान कर धन्यता का अनुभव किया । ४ मार्च की शाम को पूज्य बापूजी ने उज्जैन के लिए प्रस्थान किया ।

उज्जैन : दिनांक : ६ से ९ मार्च तक मंगलनाथ रोड़ पर स्थित आश्रम में महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर चार दिवसीय सत्संग समारोह का आयोजन हुआ, जिसमें दूर-सुदूर से आये हुए श्रद्धालुओं ने कुंडलिनी योग के आचार्य पूज्य बापूजी की ज्ञानगंगा में अवगाहन किया । विधायक शिवा कोटवानी, उपमहापौर प्रेमनारायण यादव व नगर के गणमान्य व्यक्तियों ने माल्यार्पण कर पूज्यश्री का स्वागत किया । शिवरात्रि के दिन इस महारात्रि की महिमा बतलाते हुए पूज्यश्री ने कहा :

"और सब व्रत तो उत्सव हैं लेकिन महाशिवरात्रि व्रत तपस्या है । इसे अहोरात्रि भी कहते हैं । उसका बड़ा भारी महत्त्व है..."

सत्संग के अन्तिम दिन पूज्य बापूजी ने श्रद्धालुओं से तीन प्रकार की दक्षिणा माँगी ।

(१) दीपावली के पावन पर्व पर अपने आसपास के क्षेत्रों में घूमकर गरीब-असहाय बच्चों को भोजन, कपड़े आदि प्रदान करें ।

(२) कभी-कभार चिकित्सालयों में जाकर वहाँ

भरती हुए बेसहारा लोगों को यदि अधिक मदद न भी कर सकें तो उनसे प्यार के दो शब्द बोलकर मानवतापूर्ण व्यवहार व्यक्त करें ।

(३) पान-मसाला (गुटखा), शराब, चाय, कॉफी आदि नशीली वस्तुओं का सेवन नहीं करें और जो लोग इन दुर्व्यसनों से ग्रस्त नहीं हैं वे हरिनाम का गुणगान बढ़ा दें ।

पूज्यश्री के उक्त वचन सुनकर हजारों लोगों ने अपने हाथ ऊँचे करके दुर्व्यसनों को छोड़ने व भगवद् भजन बढ़ाने का संकल्प किया ।

संतशिरोमणि पूज्य बापूजी ने अपनी सुमधुर वाणी में कहा : ***"अच्छा-बुरा कार्य करने में मनुष्य स्वतंत्र है । अच्छे कार्य का पुण्य भोगने में तो स्वतंत्र है लेकिन बुरे कर्म का फल न भोगने में स्वतंत्र नहीं । प्रकृति बलात् उसे बुरे कार्य का दण्ड देती है । जैसे, सरकार आपको पुरस्कार दे तो आप उसे वापस भी कर सकते हैं लेकिन सजा को वापस नहीं कर सकते । अतः अच्छा काम शीघ्र करना चाहिए और बुरे काम को टालते रहना चाहिए ।"***

शिविर के अन्तिम दिन विशाल भक्त-समुदाय की आँखें उस समय नम हो गईं जब इस ध्यान-योग शिविर की पूर्णाहुति करते हुए पूज्य बापूजी ने देश-विदेश से आये हुए हजारों-हजारों शिविरार्थियों को विदाई दी । इस समय बड़ा भावपूर्ण दृश्य उपस्थित हो गया था ।

दिनांक : १० मार्च को चार्टर्ड विमान से पूज्य बापूजी ने खरगोन के लिये प्रस्थान किया ।

खरगोन : मध्य प्रदेश के खरगोन क्षेत्र में दिनांक : ९ से १२ मार्च तक दिव्य सत्संग समारोह का आयोजन हुआ जिसमें श्रद्धालुओं ने दिनांक : ९ व १० मार्च को पूज्यश्री के शिष्य श्री सुरेश ब्रह्मचारी व दिनांक ११ व १२ मार्च को राष्ट्रसंत पूज्य बापूजी की पीयूषवाणी का रसास्वादन किया । मध्य प्रदेश के उपमुख्यमंत्री श्री सुभाष यादव ने सत्संग स्थल पर पधारकर पूज्यश्री के वचनामृतों का पान एवं माल्यार्पण कर स्वागत किया । दिनांक : १२ की शाम को पूज्यश्री आदिवासी क्षेत्र धड़गाँव के लिए रवाना हुए ।

धड़गाँव : वनांचलों में बसे हुए हजारों-हजारों आदिवासियों ने दिनांक : १३ मार्च को संतशिरोमणि पूज्यश्री की सत्संग-सरिता में स्नान कर धन्यता का अनुभव किया । पश्चात् विशाल भण्डारे का आयोजन हुआ जिसमें आदिवासियों को भोजन-प्रसाद के साथ वस्त्र, सत्साहित्य व दक्षिणा भी प्रदान की गई । उसके बाद पूज्यश्री ने प्रकाशा के लिए प्रस्थान किया ।

नंदुरबार : दिनांक : १४ से १६ मार्च तक आई. टी. आई के विशाल प्रांगण में गीता-भागवत सत्संग समारोह का आयोजन हुआ जिसमें दूर-सुदूर क्षेत्रों से आये हुए श्रद्धालुगणों ने पूज्यश्री के मुखारविन्द से प्रस्फुटित अमृतमयी वाणी का रसपान किया । प्रथम दिन पूज्य बापूजी के सत्संग पांडाल में पधारने पर स्कूली छात्राओं ने स्वागतगीत प्रस्तुत किया व राज्यमंत्री विजयकुमार गाविद, नगर विकास मंत्री अरुणभाई गुजराती, भूतपूर्व गृह राज्यमंत्री रमेश वलवी, विधायक नरेन्द्रकुमार पाडवी व नगर के प्रतिष्ठित नागरिकों ने माल्यार्पण कर पूज्यश्री का स्वागत किया ।

दिनांक : १६ मार्च को सत्संग की पूर्णाहुति के बाद पूज्यश्री मालेगाँव (महा.) में विशाल भक्त-समुदाय को सत्संगामृत का पान कराकर नासिक रवाना हुए और दिनांक : १७ मार्च दोपहर को उल्हासनगर पहुँचे ।

उल्हासनगर : दिनांक : १७ की शाम से १९ मार्च तक गोल मैदान में दिव्य सत्संग समारोह का आयोजन हुआ । सीधे प्रसारण (Live Telecast) द्वारा घर बैठे लाखों लोगों ने ब्रह्मनिष्ठ संत पूज्य बापूजी की अमृतमयी वाणी का लाभ लिया ।

दिनांक : १९ की सुबह विद्यार्थियों के लिए विशेष सत्संग समारोह का आयोजन हुआ जिसमें विभिन्न स्कूलों से आये हुए हजारों विद्यार्थियों ने पूज्य बापूजी से मन की प्रसन्नता, तन की तन्दुरुस्ती व बुद्धि में बुद्धिदाता के सामर्थ्य को प्रकटाने की कुँजियाँ प्राप्त कीं । महाराष्ट्र के एक्साइज मंत्र श्री जगन्नाथ पाटील, राज्यमंत्री श्री शबीर भाई पटेल, भूतपूर्व विधायक श्री शीतलदास हरचन्दानी, महाराष्ट्र के इलैक्शन कमिश्नर

श्री बी. डी. चौधरी, कल्याण क्षेत्र के महापौर श्री रमेश दलानी व थाना क्षेत्र की महापौर श्रीमती देशमुख एवं शहर के गणमान्य व्यक्तियों ने माल्यार्पण कर पूज्य बापूजी का स्वागत किया ।

सूरत : दिनांक : २१ से २४ मार्च तक सूर्यपुत्री तापी नदी के तट पर स्थित आश्रम में होली के पावनपर्व पर पूज्यश्री के सान्निध्य में भव्य एवं दिव्य ध्यान योग शक्तिपात साधना शिविर संपन्न हुआ । देश-विदेश से आये हुए हजारों शिविरार्थी भाई-बहनों ने इस शिविर में पूज्यश्री के अनुपम शक्तिपात सामर्थ्य के द्वारा कुंडलिनी योग के रहस्यमय अनुभवों का अनायास अनुभव किया एवं दिनांक : २३ मार्च को देश-विदेश से आये हुए हजारों पूनम व्रतधारी श्रद्धालुओं ने पूज्यश्री का दर्शन कर अन्न-जल ग्रहण किया ।

विवेकप्रधान मार्ग में आयास आवश्यक होता है परन्तु प्रेममार्ग में अनायास ही गुरुकृपा से साधकों का उत्थान होने लगता है... इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव यहाँ हजारों-हजारों भक्तों ने किया । भीतर से तो उनके हृदय को पूज्यश्री ने सत्संग के रंग से रंग डाला और बाहर से दिनांक : २४ मार्च को श्री गुरुदेव के पावन करकमलों से बहते पलाश-केसर मिश्रित रंग में रंगने का अनुपम लाभ हजारों लोगों ने लिया । उत्साह और उल्लासप्रेरक इस उत्सव को मनाकर भक्ति, ज्ञान और गुरुप्रसाद के रंग से अपने दिल की चुनरिया रंगवाकर भक्त-समुदाय कृतकृत्य होता हुआ आत्मरति, आत्मतृप्ति व आत्मसंतुष्टि का अनुभव करते हुए विदा हुआ ।

दिल्ली में सत्प्रवृत्तियाँ

पूज्यश्री के सान्निध्य में द्वितीय विश्वशांति सत्संग एवं गुरुपूर्णिमा महोत्सव का आयोजन । १९९६ में पूज्यश्री के अवतरण दिवस पर गरीब एवं असहाय लोगों के लिए मुफ्त राशन व्यवस्था हेतु २,२५,००० रूपयों का योगदान दिया गया । पूज्य श्री नारायण स्वामी के तीन सत्संग समारोह एवं श्री सुरेशानंदजी के तीन दिवसीय ध्यान योग शिविर का आयोजन किया गया । पूज्यश्री के सान्निध्य में विशेष विद्यार्थी सत्संग में २५००० विद्यार्थियों ने लाभ लिया । हरिद्वार एवं वृन्दावन सत्संग में समिति के सैकड़ों सेवाधारियों द्वारा सेवा में भाग लिया गया । अन्य क्षेत्रों के मेले एवं विश्व व्यापार मेले में भी साहित्य स्थल का बहुत ही प्रशंसनीय आयोजन । नव वर्ष पर विशेष सत्संग, कीर्तन आदि कार्यक्रमों का प्रभावशाली आयोजन । आश्रम में आने के लिए नि:शुल्क बस व्यवस्था की जा रही है । अखबार एवं दूरदर्शन पर समय-समय पर सत्संग समाचार एवं विशेष लेखों का प्रकाशन-प्रसारण । दिल्ली समिति के जमना पार मंडल द्वारा लाजपतनगर में संत श्री आसारामजी आरोग्यशाला का संचालन हो रहा है ।

मध्य प्रदेश में पूज्यश्री की अमृतवर्षा

पूज्यश्री के सान्निध्य में मधुर कीर्तन में सराबोर छिंदवाड़ावासी

महाशिवरात्रि के महापर्व पर उज्जैन आश्रम में आयोजित साधना शिविर में पूज्यश्री से योग-रहस्यों को समझता हुआ साधक-समुदाय

पूज्यश्री की पीयूषवाणी का अमृतपान करते हुए रायपुर के श्रद्धालु भक्त